साहित्य-सुधा

लेखकः —
प्रो० चारुदेव शास्त्री

विश्वेश्वरानन्द प्रकाशन
होशियारपुर

विश्व छात्र ग्रन्थमाला—१

साहित्य-सुधा

लेखकः—

प्रो. चारुदेव शास्त्री,

M. A. M. O. L.

होश्यारपुर

विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन

१९५१

विश्व छात्र ग्रन्थमाला—१

साहित्य-सुधा

लेखक :—

प्रो. चारुदेव शास्त्री,
M.A. M.O.L.

होशियारपुर

विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन

१९५१

प्राक्-कथन

१. माला का क्षेत्र

इस से पूर्व विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान द्वारा (१) 'शान्तकुटी वैदिक ग्रन्थमाला', (२) 'दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला', (३) 'विश्वेश्वरानन्द भारत-भारती ग्रन्थमाला', (४) 'सर्वदानन्द विश्व ग्रन्थमाला' और (५) 'विश्व मधुर ग्रन्थमाला' नामक मालाओं के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रकाशन-कार्य चल रहा है। अब प्रचलित की जा रही उपस्थित 'विश्व छात्र ग्रन्थमाला' का ध्येय उन सब से विभिन्न है।

आज हमारे स्वतन्त्र भारत के छात्र, यदि उन की शिक्षा-दीक्षा उत्तम ढंग से सम्पन्न हो, तो समस्त समन्वित संसार में सांस्कृतिक कर्णधार के रूप में अपने राष्ट्र द्वारा प्रतिष्ठा और सम्मान की प्राप्ति के आधार बन सकते हैं। उसी उत्तम शिक्षा-दीक्षा के अंग-भूत विविध पाठ्य विषयों से सम्बन्धित, परीक्षोपयोगी तथा सामान्यरूप से योग्यता-वर्धक श्रेष्ठ ग्रंथों का सम्पादन और प्रकाशन ही इस 'माला' का विस्तृत क्षेत्र होगा।

२. उपस्थित ग्रन्थ

अनादि काल से चली आ रही भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल, प्राण और आधार सभी कुछ संस्कृत-साहित्य है। प्रत्येक भारतीय छात्र जितना अधिक इस से अपना प्रेम और परिचय बढ़ाएगा, उतना अधिक वह सच्ची भारतीयता के आत्मा का दर्शन कर सकेगा। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए, संस्कृत साहित्य के अन्दर सरलता-पूर्वक

प्रवेश कराने वाले और उस की संजीवनी सुधा का पान कराने वाले इस उत्तम पाठ्य-ग्रन्थ के द्वारा इस "माला" का प्रारम्भ किया गया है। इस के सुयोग्य रचयिता, प्राध्यापक श्री चारुदेव जी ने अपना जीवन संस्कृत-भाषा और साहित्य की सफल सेवा और अभ्यास में ही लगाए रखा है और आप इस क्षेत्र में चोटी के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। मैं अतीव प्रसन्न हूँ कि उन्होंने ग्रन्थ को छात्रों के लिए अधिक से अधिक लाभदायक बनाने का पूरा और सफल प्रयत्न किया है और इसके कलेवर को ठीक जितना चाहिए, उतना ही रखा है। छात्रों के ही और अधिक लाभ को लक्ष्य में रखते हुए, 'माला' के सुयोग्य संपादक श्री देवदत्त जी शास्त्री तथा उन के सहयोगी वर्ग सर्व-श्री भीमदेव शास्त्री, M. A., M. O. L, श्री अमरनाथ शास्त्री, व्याकरणाचार्य, एवं पीताम्बरदत्त शास्त्री ने इस ग्रन्थ का जिस उत्तम ढंग से संपादन किया है और हमारे मुद्रण विभाग के श्री रेवतराम शर्मा आदि कर्मिष्ठों ने ग्रन्थ के पृष्ठों की संख्या को व्यर्थ ही बढ़ाने की चेष्टा न करते हुए, जिस सुन्दर और शुद्ध रूप में इसे छापा है, उस के द्वारा सभी अध्यापक और छात्र-वर्ग पूर्णतया सन्तुष्ट और उपकृत होंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशयारपुर
ज्येष्ठ २०, संवत् २००८

विश्वबन्धु

—:o:—

साहित्य-सुधा

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक हाई स्कूलों की नवमी तथा दशमी कक्षाओं के विद्यार्थियों की अपेक्षाओं और योग्यता को ध्यान में रख कर निर्माण की गई है। इस में केवल संग्रह ही नहीं है। इस में अपनी रचना भी है और संग्रह भी है। यह इसलिए किया गया है कि नये रोचक विषयों का तथा कवि-वर्णित पुराने विषयों का सुकुमार-मति छात्रों के लिए सरल गद्य-रूप में समावेश हो और साथ ही, यह बात प्रमाणित हो कि शुद्ध संस्कृत अब भी विविध विषयों के निरूपणार्थ व्यवहार में लाई जा सकती है। परन्तु स्व-कृति थोड़ी मात्रा में रखी गई है, अधिक मात्रा तो प्राचीन साहित्य से किए गए संग्रह की ही है।

अपनी ओर से रचना करते हुए तथा अन्य ग्रन्थों से संग्रह करते हुए हम ने भाव की उत्तमता और भाषा की शुद्धि तथा सरलता पर विशेष ध्यान दिया है। नवमी कक्षा में प्रवेश करने वाले छात्रों की संस्कृत की योग्यता बहुत कम होती है। इस बात को अनुभव करते हुए हम ने कठिन समासों वाली और अप्रसिद्ध पदों वाली रचना का सर्वत्र परित्याग किया है। प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों में वक्तव्य को कहा गया है। क्रिया-पद अत्यन्त प्रसिद्ध तथा प्रायः प्रयोग में आने वाले ही रखे गये हैं। सभी पाठ सरल भी हों और मधुर भी, ऐसा यत्न किया गया है।

भाव की स्पष्टता का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। किसी पाठ में भी एक भी पङ्क्ति ऐसी नहीं रखी गई जो मैट्रिकुलेशन परीक्षार्थियों के लिये अति कठिन हो। पद्य-संग्रह में भी भाव प्रायः स्पष्ट है। अथवा, संक्षिप्त व्याख्या द्वारा उसे झट स्पष्ट और सुबोध बनाया जा सकता है।

संग्रह करते हुए हमने विशेष ध्यान रखा है कि जहाँ हमारे विद्यार्थी साहित्य-सुधा का जी भर कर पान करें, वहाँ उन्हें व्यवहार और नीति का भी पर्याप्त ज्ञान हो और चरित्र-निर्माण में भी पूरी सहायता मिले। साथ ही, उन के सुकुमार हृदय-पटल पर भारतीय संस्कृति का गौरव अंकित हो, इस लिये राम आदि महापुरुषों के उज्ज्वल चरित्र-वर्णन तथा हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि से नीति-विषयक कथाएँ उद्धृत की गई हैं। नाटक-साहित्य के रसास्वादन के लिये महाकवि भास की रचना 'दूतवाक्य' का समावेश किया गया है। और, मनोरञ्जन के लिये कुछ पहेलियाँ भी दी गई हैं तथा रुचि के बढ़ाने के लिये लोकोक्तियाँ भी संगृहीत की गई हैं।

विद्यार्थियों के स्पष्ट बोध के लिये पुस्तक के अन्त में भाव-भाषा-विषयक पर्याप्त टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। शब्दों का अर्थ लिङ्ग-सहित निर्देश किया गया है। व्याकरण के कठिन रूपों को सरल भाषा में समझा दिया गया है। समासों का विग्रह भी जहाँ तहाँ दे दिया गया है।

मुद्रण में जो सावधानी तथा कुशलता प्रकाशक महानुभाव श्री देवदत्त शास्त्री तथा उनके सहकारी वर्ग ने दिखाई है, वह सर्वथा सराहनीय है। सन्धि होने पर भी पद जुदा-जुदा रखे गये हैं। पदान्त वर्ण स्, ष्, र् आदि अपने-अपने पदों

के अन्त में जुदा दिखा दिये गये हैं, आगे आने वाले पदों के आदि वर्णों के साथ नहीं जोड़े गये। इस से पढ़ने में कुछ भी क्लेश नहीं होगा और, साथ ही, भाषा का प्रवाह भी नहीं रुकेगा। कठिन सन्धियों को कोष्ठकों के अन्दर जुदा करके भिन्न प्रकार के टाईप में रख दिया गया है। विद्यार्थी पहले सन्धि-सहित वाक्यों को प्रवाह मे पढ़ें, पश्चात् समझने के लिये कोष्ठस्थ पाठ के अनुसार पढ़ें, इस से संपूर्ण सिद्धि होगी। समस्त पदों के अवयवों को–चिह्न से जुदा कर दिया गया है, जिससे पढ़ने में विशेष सुविधा होगी और अर्थ भी शीघ्र समझ में आ जायगा। पुस्तक सर्वथा शुद्ध छपी है और निर्णय-सागरीय मुद्रणाक्षरों ने इस की शोभा और भी बढ़ा दी है। प्रथम, मेरे इस ग्रन्थ को अपनी ओर से प्रकाशनार्थ अङ्गीकार करने के लिए, दूसरे, इसे उपर्युक्त सारे उद्योग के द्वारा इस प्रकार से विशेष गुण-युक्त बना कर अत्यल्प समय के अन्दर प्रकाशित कर देने के लिये और, अन्त में, परन्तु विशेषतः, ग्रन्थ के पृष्ठों की संख्या को उचित मर्यादा के अन्दर रखते हुए, सुन्दर जिल्द से युक्त करके भी सस्ते दामों पर प्रस्तुत कर देने के लिए मैं इन का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

डी. ए. वी. कालेज, अंबाला
ज्येष्ठ १८, संवत् २००८

चारुदेव शास्त्री।

पाठ-सूची

पद्यभागः

प्रथमः पाठः

ईश-स्तुतिः

त्वम् आदि-देवः पुरुषः पुराणस्

त्वम् अस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम

त्वया ततं विश्वम् अनन्त-रूप ॥१॥

पिताऽसि लोकस्य चराऽचरस्य

त्वम् अस्य पूज्यश् च गुरुर् गरीयान् ।

न त्वत्-समोऽस्त्य(स्ति अ)भ्यधिकः कुतोऽन्यो

लोक-त्रयेऽप्य(पि अ)प्रतिम-प्रभाव ॥२॥

त्वम् एव माता च पिता त्वम् एव

त्वम् एव बन्धुश् च सखा त्वम् एव ।

त्वम् एव विद्या द्रविणं त्वम् एव

त्वम् एव सर्वं मम देव-देव ॥३॥

कल्याणानां त्वम् असि महसां भाजनं विश्व-मूर्ते

धुर्यां लक्ष्मीम् अथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद ।

यद् यत् पापं प्रतिजहि जगन्-नाथ नम्रस्य तन् मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥४॥

ओम् शम् !

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों का अर्थ लिखो–

पुराणः। निधानम्। द्रविणम्। भाजनम्। भृशम्।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति, और वचन लिखो–

वेत्ता। महसाम्। त्वयि। भूयसे। विश्व-मूर्ते।

४—नीचे लिखे पदों में सन्धि-कार्य समझाओ–

पिताऽसि। जगन्-नाथः। तन् मे। अभ्यधिकः।

द्वितीयः पाठः

सृष्टिः

अहो सुन्दरीऽयं सृष्टिः। नूनं सुन्दर-तरोऽस्याः स्रष्टा स्यात्। एक एवेश्वर इमां सृजति च पालयति च संहरति चेति शास्त्र-काराः। बह्व(हु-अ)त्र वर्णनीयम्। सन्त्य(न्ति-अ)त्र तुङ्गा रम्याः पर्वताः, वि-विधा वृक्षाः, रमणीया निर्-झराः, मनो-हरा निम्न-गाः, गम्भीराः सागराः, गो-महिष्या(षी-आ)दयः सौम्याः सत्त्वाः, मृगेन्द्राऽऽदय उग्राः श्वापदाः, वि-चित्राः ख-गा जल-चराश् च जीवाः।

अस्ति चेह तेजसां राशिः सूर्यः। अयं हि सर्वं जगद् भासयति, वर्धयति, पोषयति च। अस्ति चाऽत्र शीत-रश्मिश् चन्द्रः। एष जीवान् सुखयति रसं चौ(च-ओ)षधीषु निषिञ्चति। अस्ति चेह वातो येन प्राणिनः प्राणवन्तः। सन्ति चाऽत्राऽसंख्यातास् तारा या निशासु गगन-मण्डलं मण्डयन्ति।

मनुष्यो हि विधातुर् उत्तमः सर्गः। अस्यैव कृते भगवता चेतना अचेतनाश् च नाना-पदार्थाः सृष्टाः। येनेश्वरेण वि-चित्राऽनन्ता च सृष्टिर् एषा विरचिता, तं भगवन्तं भक्त्या श्रद्धया च वारं वारं नमामः।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—निम्नलिखित पदों में सन्धि-कार्य समझाओ—

सुन्दरीऽयम् । सन्त्यत्र । मनो-हराः । जलचराश् च । मनुष्यो हि । सृष्टिर् एषा ।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन लिखो—

स्रष्टा । तेजसाम् । भगवता । भक्त्या ।

४—*सृजति । संहरति । मण्डयन्ति । नमामः* —इन क्रिया-पदों के धातु, पुरुष और वचनों का निर्देश करो और लङ् लकार के प्रथम पुरुष एक-वचन के रूप लिखो ।

तृतीयः पाठः

प्रातर्-विहारः

रम्यः प्रभात-समयः। शीतः समीरो मन्द-मन्दं वहति, मनांसि च विनोदयति। आगच्छ, सखे! उपवनेऽस्मिन् विहरावः। पश्य, पूर्वस्यां दिशि मरीचि-माली चक्रवालं रञ्जयन् उदेति। वसन्त-कालोऽयम्। अहो दर्शनीयता कुसुमानाम्। एते मदो(द-उ)न्मत्ता भ्रमराः पुष्पाणाम् उपरि भ्रमन्तो मधुरं गुञ्जन्ति। कोकिलानां कल-कूजितैश् च दिशः स्वनन्ति।

उपवन-प्रवेशाद् इव पुष्पाणां गन्धेन तृप्यति घ्राणं प्रसीदति च चेतः। तरवो लताश् च कोमलैः पल्लवैर् नयने हरन्ति, पराग-पटलेन च भुवम् आचिन्वन्ति। दिशश् च नव-हरितैः सस्याऽङ्कुरैः प्रीतिम् आवहन्ति। नव-तृणं मरकतम् इव प्रतिभाति, तस्यो-(स्य उ)परि तुषार-विन्दवो मुक्ता-श्रियं लभन्ते। पुष्पिताः फलिताश् च वृक्षाः प्रातः-पवनेन प्रकम्पन्ते। कृषकोऽयं कूपाद् अरघट्टेन जलम् उत्कर्षति केदारांश् च सिञ्चति।

मन्ये चिरं भ्रान्तम् आवाभ्याम्। पुरा सूर्याऽऽतपश् चण्डो भवति, एहि, गृहम् प्रति निवर्तावहे।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों के अर्थ स्पष्ट लिखो-

मरीचि-माली। चक्रवालम्। सस्याऽङ्कुरैः। कूपात्। अरघट्टन। केदारांश् च।

३—निम्नलिखित पदों के शब्द, विभक्ति और वचन लिखो-

मनांसि। पूर्वस्याम्। दिशि। नयने। श्रियम्। आवाभ्याम्।

४—इन क्रिया-पदों के धातु लिखो और उनके विधिलिङ् लकार में रूप लिखो-

विनोदयति। उदेति। प्रसीदति। हरन्ति। सिञ्चन्ति।

चतुर्थः पाठः

हिम-वतो वर्णनम्

एतद्-देशस्यो(स्य उ)त्तरस्यां दिशि 'हिमाऽऽलय' इति यथार्थ-नामा शैल-राजो विराजते। अस्यो(स्य उ)पत्यकासु दिगन्त-व्यापीनि महा-विस्ताराणि नानाविध-वृक्ष-गुल्म-लताभिर् निचितानि निबिडानि मनोऽभिरामाणि वनानि स्थितानि।

अस्त्य(स्ति अ)त्राऽनन्तो हिम-राशिः। तस्माद् इतो जायन्ते गङ्गा-यमुनाऽऽदयो महा-नद्यः, यद्-अधीना देशस्याऽस्य सस्य-संवृद्धिः। अथाऽप्य(पि अ)त्र प्रभूतं वर्षति देवः। तेनाऽत्र महा-वृक्षा देव-दारवस् समृद्धि-हेतवः शोभा-हेतवश् च बहुलाः।

श्वापद-समाकुला अस्य कन्दरा दिशो ध्वनयन्ति भयं च जनयन्ति।

धातुमान् अयं गिरिः। को नाम धातुर् योऽत्र दुर्लभः स्यात्। यत्-सत्यम् अयम् अनन्तानां रत्नानां प्रभवः। सन्ती(ति इ)ह स्थाने स्थाने रम्याणि तपो-वनानि, पुण्यानि च तीर्थानि। यत्र तपो-धनाः कन्द-मूल-फलाऽशनास् तपः-स्वाध्याय-निरताः कालं नयन्ति।

अथाऽपि क्वचिद् अत्र स्वच्छ-शीतो(त-उ)दकानि स्रोतांसि स्रवन्ति, क्वचिन् निर्झराः स-शब्दं प्रवहन्ति। किम् अन्यत्। बहूनि चे(च इ)ह मनोज्ञानि दृष्टि-विलोभनानि दृश्यानि, यैर् आकृष्टा

अनेके दर्शका विहरण-रसिकाः प्रति-वर्षं निदाघेऽस्याऽधित्यकाः सेवन्ते।

हिम-वान् एष एतद्-देशस्य संरक्षणे धृत-व्रतः सीमा-रक्षक इवाऽहर्-निशम् अ-प्रमत्तस् तिष्ठति। असौ नित्यम् आक्रमण-कारिणो विदेशीयांस् तुङ्गैः शृङ्गैर् दूरत एव वारयति।

एवम्-उच्चान्य(नि अ)स्य शिखराणि नाम, यत् कस्यापि देशस्य केनाऽपि साहसिकेन नाऽद्याऽप्या(पि आ)रोढुं पारितानि॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित समस्त पदों के विग्रह-वाक्य दिखा कर समासों के नाम भी लिखो—

हिमालयः। शैलराजः। वृक्षगुल्मलताभिः। तपःस्वाध्याय-निरताः। स्वच्छशीतोदकानि। सीमारक्षकः।

३—अधोलिखित पदों में सन्धि-छेद करो—

अस्योपत्यकासु। विदेशीयांस्तुङ्गैः।

४—निम्नलिखित पदों का अर्थ लिखो—

आक्रम्य। अधित्यकाः। कन्दरासु। आरोढुम्।

महा-राजो रामो लोकाऽपवाद-भयाद् यदा कठोर-गर्भां सीतां वनेऽत्यजत्, तदाऽपि विविधान् क्लेशान् सहमानाऽपीऽयं भर्तारं नाऽगर्हत। पत्युश् चरणयोर् आत्म-समर्पणम् आत्मनो बलि-प्रदानम् एव सीतायाः पातिव्रत्यम्। एवं सो(मा उ)परताऽप्य(पि अ)नुपरता। अत एवाऽद्याऽपि साऽऽदर्शः कुलाऽङ्गनानाम् इति स्मर्यते वन्द्यते च।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों में सन्धि-कार्य समझाओ-

सुखान्येव। तत्रैतस्याः। विषमतरेऽप्यस्मिन्। विजयाद् अनन्तरम्। पत्युश् चरणयोः।

३—नीचे लिखे पदों के अर्थ लिखो-

अहर् अहः। स्मित-पूर्वम्। अतर्जत्। कुलाऽङ्गनानाम्। आदर्शः। अ-प्रतिमेन। औदार्येण। उपरता।

४—इन क्रियापदों के धातु, पुरुष और वचन लिखो-

आसीत्। अभ्यनन्दत्। व्यलोभयत्। अगर्हत।

सप्तमः पाठः

शकुन्तलो(ला-उ)पाख्यानम्

आसीत् पुरा दुष्यन्तो नाम चन्द्र-वंशीयो महा-राजः। स चै(च ए)कदा मृगयां निर्गतो दैवान् मृगम् अनुसरन् महर्षेः कण्व-स्याऽऽश्रमं प्राऽऽप्तः। महर्षिश् च तदा सोम-तीर्थं गत इत्य(ति अ)-संनिहितः। तत्र च स आश्रम-पादप-सेचन-परास् तिस्रस् तपस्वि-कन्यका अपश्यत्। आसाम् अतीव रूपवती शकुन्तला-ऽऽत्मनो निर्व्याज-मनोहरेण शरीरेण नृपति-चित्तं बलाद्-इवा-ऽऽहरत्। शकुन्तलाऽपि तम् अद्भुतं पुरुषकार-मूर्तिं हृद्याऽऽकृतिं नृ-पतिं दृष्ट्वा तस्मिन् बद्ध-भावाऽभवत्। ततस् तयोर् गन्धर्वेण विधिना विवाहः संवृत्तः।

अथ दुष्यन्तः कार्य-वशाद् ध(ह)स्तिना-पुरं नाम निज-राजधानीं प्रति निवृत्तः। प्रस्थानात् पूर्वं स स्वनामाऽङ्कितम् अङ्गुलीयकं शकुन्तलायै दत्त्वा ताञ् चाऽचिरेण स्वम् अन्तःपुरम् आनेतुं प्रतिज्ञातवान्।

ततश्च तस्मिन् राज्ञि गते तद्-विरहाऽऽतुरा तमेव ध्यायन्ती शकुन्तलाऽऽश्रमम् आगतम् ऋषि-प्रवरं दुर्वाससं प्रति मन्दा-ऽऽदरा सती रोषं गतेन तेनै(न ए)वम् अभिशप्ता— पापे! यम् अनन्यमानसा त्वं विचिन्तयन्ती तपो-निधिं मां स्वम् आवासम् आगतम् अपि न वेत्सि, स त्वां बहुशो बोधितोऽपि न स्मरिष्यतीति।

इत्थम् अभिशप्य दुर्वाससि निर्गते तीर्थ-यात्रायाः प्रत्यागतो महर्षिः कण्वः स्वयोग-बलेनैव दुष्यन्त-शकुन्तलयोर् विवाह-वृत्तान्तं विज्ञाय परां तुष्टिम् अगात्। ततोऽतिक्रान्तेषु च केषुचिद् दिवसेषु कण्वो द्वाभ्यां निज-शिष्याभ्यां मुनि-कुमाराभ्यां धात्र्या गौतम्या च सह गर्भवतीं तां पति-गृहाय प्रास्थापयत्।

तत्र दुष्यन्तो महाराजः मुनेर् दुर्वाससश् शापाद् विस्मृत-विवाह-वृत्तान्तस् तां प्रत्याख्यातवान् । तदा स्वानि भाग्यानि विनिन्दन्तीं बहु-विधं च विलपन्तीं वराकीम् इमां दिव्यं किञ्चिज् ज्योतिर् आदाय नभो-भागं निनाय। हेमकूट-नाम्नि पर्वते च महर्षेर् मारीचस्याऽऽश्रमे मेनकया जनन्या सह कालं क्षपयन्ती सा भरतं नाम पुत्र-रत्नम् असूत।

अथ कस्यचित् कालस्य महाराज-दुष्यन्तोऽकस्माद् धीवर-हस्तगतं स्वनामाऽङ्कितम् अङ्गुलीयकं रक्षा-पुरुषैर् उपानीतं विलोक्य शकुन्तलायाः प्रणय-कथां च संस्मृत्य पुनश्च ताम् उपलब्धुकामो भृशं शोक-पर्याकुलो बभूव। दैवात् कदाचिद् इन्द्रेण किम् अपि कार्यम् उद्दिश्य दुष्यन्तः स्वर्गं समाकारितः। ततः प्रत्यागच्छन्न् असौ मारीचाऽऽश्रमे शकुन्तलां तद्-आत्मजं भरतं च दृष्टवान् परं च हर्षितवान्। एवं शकुन्तलया संगतोऽसौ महा-भागो हस्तिना-पुरं प्रत्यागत्य स-पुत्रकलत्रः सु-चिरं सुखम् उवास। इदं च भारतं वर्षम् अस्यैव भरतस्य नाम्ना प्रथितम् अभवत्।

अभ्यास

१—इस कथा को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों में सन्धि-कार्य समझाओ-

दुष्यन्तो नाम । बलादिवाऽहरत् । स्वनामाऽङ्कितम् । तपो-निधिम् ।

३—अधोलिखित पदों का अर्थ लिखो-

मृगयाम् । विरहाऽऽतुरा । आ-त्रासम् । प्रास्थापयत् । उपलब्धुकामः ।

४—निम्नलिखित समासों का विग्रह करो-

आश्रम-पादप-सेचन-पराः । धीवर-हस्त-गतम् । विस्मृत-विवाह-वृत्तान्तः ।

अष्टमः पाठः

वणिग्-लोलुपता

अस्ति कस्मिंश्चिद् अधिष्ठाने जीर्ण-धनो नाम वणिक्-पुत्रः। स च द्रव्य-क्षयाद् देशाऽन्तर-गमन-मना बभूव। तस्य च गृहे लोह-भार-घटिता पूर्व-पुरुष-उपार्जिता तुलाऽऽसीत्। तां च कस्यचिद् वणिजो गृहे निक्षेप-भूतां कृत्वा देशाऽन्तरं प्रस्थितः।

ततः सुचिरं कालं देशाऽन्तरं भ्रान्त्वा पुनः स्व-पुरम् आगत्य तं श्रेष्ठिनम् उवाच—भोः श्रेष्ठिन्! दीयतां मे सा निक्षेप-तुला। स आह—भोः! नाऽस्तीऽदानीं सा त्वदीया तुला। सा तु मूषिकैर् भक्षिता।

जीर्ण-धन आह—भोः श्रेष्ठिन्! नाऽस्ति दोषस् ते, यदि मूषिकैर् भक्षिते(ता इ)ति। यतो हि न किञ्चिद् अत्र संसारे शाश्वतम् अस्ति। तथाहि—

"कायः संनिहिताऽपायः संपदः पदम् आपदाम्।
समागमाः साऽपगमाः सर्वम् उत्पादि भङ्गुरम्" ॥१॥

परम् अहम् अधुना स्नानाऽर्थं नदीं गन्तुम् इच्छामि। तत् त्वम् आत्मीयं शिशुम् एतं मया सह स्नानो(न-उ)पकरण-हस्तं प्रेषय। सोऽपि चौर्य-भयाच् छङ्कितः स्व-पुत्रम् उवाच—वत्स! पितृव्योऽयं ते स्नानाऽर्थं नदीं यास्यति। तद् गम्यतां त्वयाऽनेन सार्धं स्नानो(न-उ)पकरणम् आदाये(य इ)ति।

अथाऽसौ वणिक्-शिशुः स्नानो(न-उ)पकरणम् आदाय प्रहृष्ट-मनास् तेनाऽभ्यागतेन सह प्रस्थितः ।

तथाऽनुष्ठिते वणिक्-पुत्रः स्नात्वा तं च शिशुं नदी-गुहायाम् एकस्यां सुगुप्तं निक्षिप्य तद्-द्वारं बृहच्-छिलयाऽऽच्छाद्य स-त्वरं गृहम् आगतः । पुत्रम् अनागतं दृष्ट्वा तेन वणिजा पृष्टः—भो अभ्यागत, कथय कुत्र मे शिशुर् यस् त्वया सह नदीं गत इति ।

स आह—भोः श्रेष्ठिन् ! पश्यतो मे स नदी-तटाच् छ्येनेनाऽपहृत इति । श्रेष्ठिनो(ना उ)क्तम्—नैतत् संभवति, मिथ्या-वादिन् ! किं क्वचिच् छ्येनोऽपि बालं हर्तुं शक्नोति ? मिथ्या-प्रलपितम् एतत् ते, न विश्वासाऽर्हम् । तत् समर्पय मे सुतम् । अन्यथा राज-कुले निवेदयिष्यामि—इति ।

तत्र त्वया महत्य(ती अ)पि यन्त्रणा भोक्तव्या भविष्यति । ततः स वणिक्-पुत्र आह—भोः सत्य-वादिन् ! यथा श्येनो बालं नेतुं न शक्नोति, तथा मूषिका अपि लौहभार-घटितां तुलां न भक्षयितुं शक्नुवन्ति ।

तद् अर्पय मे तुलां, यदि दारकेण प्रयोजनम् । एवं विवदमानौ द्वाव(औ अ)पि तौ राज-कुलम् गतौ । तत्र श्रेष्ठी प्रोवाच—राजन् ! मम शिशुर् अनेन चौरेणाऽपहृतः ।

अथ धर्माऽधिकारिणस् तम् ऊचुः—भोः समर्प्यताम् अस्य श्रेष्ठिनः पुत्र इति । ततः स आह—महाराज ! किं करोमि, पश्यतो मे नदी-तटाच् छ्येनेनाऽपहृतोऽस्य बालः ।

तच् छ्रुत्वा तैर् उक्तम्—भो, न सत्यम् इदम् भवताऽभिहितम् । किं श्येनोऽपि शिशुं हर्तुं समर्थो भवति ?

स आह—भो भोः सभ्याः ! श्रूयतां मद्-वचः—

तुलां लोह-सहस्रस्य यत्र खादन्ति मूषिकाः ।
राजंस् तत्र हरेच् छ्येनो बालकं किम् नु संशयः ॥२॥

इत्या(ति आ)कर्ण्य साऽऽश्चर्यं सभ्याः प्रोचुः—कथम् एतत् ?

ततः स वणिक्-पुत्रः आदितः सर्वं वृत्तान्तं निवेदयामास ।

अथ श्रेष्ठी अपि पृष्ठस् तद् वृत्तम् अङ्गीचकार ।

ततस् तैर् विहस्य द्वाव(औ अ)पि तौ परस्परं संबोध्य तुला-शिशु-प्रदानेन संतोषितौ ।

अभ्यास

१—इस कथा को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—अधोलिखित पदों के विग्रह-वाक्य लिख कर समासों के नाम भी लिखो-

लोहभार-घटिता । जीर्ण-धनः । स्नानोपकरण-हस्तम् । वणिक्-पुत्रः ।

३—नीचे लिखे पदों में सन्धि-कार्य समझाओ-

भक्षितेति । चौर्यभयाच् छङ्कितः । महत्यपि । श्येनोऽपि ।

४—इन पदों के अर्थ लिखो-

निक्षेप-तुला । निक्षिप्य । यन्त्रणा । संबोध्य ।

नवमः पाठः

मूर्ख-पण्डितानाम् (१)

कस्मिंश्चिद् अधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वम् आगता वसन्ति स्म। अथै(थ ए)कदा (बालभावे) तेषां मतिर् अजायत। भोः! देशाऽन्तरं गत्वा विद्याया उपार्जनं क्रियेत।

अथाऽन्यस्मिन् दिवसे ते ब्राह्मण-कुमारा इति निश्चित्य विद्यो(द्या-उ)पार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः। तत्र च विद्या-मठे गत्वा गुरोः सकाशात् पठितुम् आरब्धाः।

एवं द्वादशाऽब्दान् यावद् एक-चित्ततया पठित्वा ते सर्वेऽपि विद्यायां कुशलाः संजाताः। ततस् तैश् चतुर्भिर् मिलित्वो(त्वा उ)क्तम् यद् वयं सर्वे विद्या पारं-गताः, तद् इदानीम् उपाध्यायम् उत्कलापयित्वाऽनुज्ञां च लब्ध्वा स्व-देशं गच्छामः। तथै(था ए)व क्रियताम् इत्यु(ति उ)क्त्वा ब्राह्मणा उपाध्यायम् उत्कलापयित्वा-ऽनुज्ञां लब्ध्वा पुस्तकानि च गृहीत्वा ततः प्रचलिताः।

यावत् किञ्चिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ। तत्रैवो(व उ)पविष्टाः सर्वे। ततस् तेष्वे(षु ए)कः प्रोवाच—'भोः केन मार्गेण तावद् गच्छामः?' एतस्मिन् समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद् वणिक्-पुत्रो मृत आसीत्। तस्य दाहाऽर्थं महा-जनस् तच्-छवम् उत्थाप्य श्मशान-भूमिं नयमानोऽभवत्।

ततश् चतुर्णां मध्याद् एकेन पुस्तकम् उद्घाट्याऽवलोकितम्,

तत्र लिखितम् आसीत्—'महा-जनो येन गतः स पन्थाः' इति। ततस् तेनो(न उ)क्तम्—पश्यत, पश्यत, अधुनाऽस्माभिर् महा-जन-मार्गेण गन्तव्यम्।

अथै(थ ए)वं निश्चित्य ते पण्डिता यावन् महाजन-मेलापकेन सह यान्ति, तावत् तत्र श्मशाने गत्वा रासभम् एकम् अपश्यन्। ततो द्वितीयेन पण्डितेन निज-पुस्तकं दृष्ट्वो(ष्ट्वा उ)क्तम्—

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्-भिक्षे शत्रु-संकटे।
राज-द्वारे श्मशाने च यस् तिष्ठति स बान्धवः॥

तद् अहो, अस्मदीयोऽयं बान्धवः। ततः कश्चित् तस्य ग्रीवायां लगति, कोऽपि पादौ क्षालयति।

अथ यावत् ते पण्डिता दिशाम् अवलोकनं कुर्वन्ति तावत् कश्चिद् उष्ट्रो वेगेनाऽऽगच्छन् दृष्टः। तैश् चो(च उ)क्तम्—किम् एतत्? तावत् तृतीयेन पुस्तकं विलोक्य भणितम्—

'धर्मस्य त्वरिता गतिः'

तद् एष धर्मस् तावत्। चतुर्थेन प्रत्यु(ति उ)क्तम्—तर्हि, 'इष्टं धर्मेण योजयेत्'।

अभ्यास

१—इस कथा को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे शब्दों में सन्धि-कार्य समझाओ-

अथैकदा। ततस्तैश्चतुर्भिः। किञ्चिन्मार्गम्। तच्छ्रवम्।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन दिखाओ—

पन्थानौ। मार्गेण। एतस्मिन्। चतुर्णाम्। एषः।

४—नीचे लिखे पदों का विग्रह-वाक्य लिखो—

द्वादशाऽब्दान्। महाजनः। महाजन-मार्गेण।

५—नीचे लिखे पदों का अर्थ लिखो—

सकाशात्। उत्कलापयित्वा। दाहार्थम्। भणितम्।

दशमः पाठः

मूर्ख-पण्डितानाम् (२)

अथ तैः स रासभः उष्ट्र-ग्रीवायां बद्धः। ततः केन-चिद् गत्वा तत्-स्वामिनो रजकस्याऽग्रे तत् कथितम्। यावद् रजकस् तेषां मूर्ख-पण्डितानां प्रहार-करणाय समायातस् तावत् ते ततः प्रनष्टाः।

ततस् ते यावद्ऽग्रे स्तोकं मार्गं यान्ति, तावत् काचिन् नदी समासादिता। तस्याश् च जल-मध्ये पलाश-पत्रम् आयाद् दृष्ट्वा पण्डितेनै(न ए)केनोक्तम्—

"आगमिष्यति यत् पत्रं तद् अस्मांस् तारयिष्यति।"

इति कथयित्वा तत्-पत्रस्योपरि पतितो यावन् नद्या नीयते, तावत् तं नीयमानम् अवलोक्य पण्डितेनाऽन्येन केशाऽन्तं गृहीत्वो(त्वा उ)क्तम्—

सर्व-नाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्व-नाशो हि दुः-सहः॥

इत्युक्त्वा तस्य शिरश्-छेदो विहितः।

अनन्तरं तैर् गत्वा कश्चिद् ग्राम आसादितः। तत्र च ग्रामीणैर् निमन्त्रितास् ते पृथक्-पृथग् गृहेषु भोजनार्थं प्राप्ताः।

तत्रै(त्र ए)कस्य घृत-खण्ड-युक्ताः सूत्रिकाः भक्षणार्थं दत्ताः। ता अवलोक्य पण्डितेन सहसा भणितम्—

"दीर्घ-सूत्री विनश्यति"

एवम् उक्त्वा भोजनं परित्यज्य तद् गृहान् निर्गतः।

तथा द्वितीयस्य भोजनाऽर्थं मण्डकाः दत्ताः। तेनाऽपि ता विलोक्यो(क्य उ)क्तम्—

"अतिविस्तार-युक्तं यत् तद् भवेन् न चिराऽऽयुषे।"

इति। स चाऽपि भोजनं विहाय निर्यातः।

अथ तृतीयस्य वटिका-भोजनं दत्तम्। तत्राऽपि पण्डितेनो-(न उ)क्तम्—

"छिद्रेष्व(षु अ)नर्थाः बहुलीभवन्ति"

एवं ते त्रयोऽपि पण्डिताः क्षुत्-क्षाम-कण्ठाः लोकैर् विहस्य-मानास् ततः स्थानात् स्व-गृहाणि गताः।

तथा चोक्तम्—

शास्त्राण्य(णि अ)धीत्याऽपि भवन्ति मूर्खाः,
यस् तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्॥ इति॥

अभ्यास

१—इस कथा को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों में शब्द, विभक्ति, वचन लिखो—
तेषाम्। आयात्। गृहात्। चिराऽऽयुषे। त्रयः।

३—नीचे लिखे समस्त पदों के विग्रह-वाक्य लिखो–

प्रहार-करणाय । सर्व-नाशः । घृत-खण्ड युक्ताः । विस्तार-युक्तम् । स्व-गृहाणि ।

४—नीचे लिखे पदों में सन्धि-कार्य समझाओ–

रजकस्याग्रे । अस्मांस् तारयिष्यति । सर्वनाशो हि । भवेन् न । त्रयोऽपि ।

५—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ लिखो–

केशान्तं गृहीत्वा । दुः-सहः । निर्यातः । विहस्य ।

एकादशः पाठः

चौर-चातुर्यम्

आसीत् काञ्चीपुरं नाम राजधानी, तस्याश् च सुप्रतापो नाम राजा। तत्रैकदा कस्याऽपि धनिनो धनं चोरयन्तश् चत्वारश् चौराः सन्धि-द्वारि प्रशासितृ-पुरुषैः प्राप्ताः शृङ्खलाभिर् बध्वा च राज्ञे निवेदिताः।

राजा—रे रे घातकाः पुरुषाः! यूयम् एतांश् चतुरोऽपि चौरान् नगराद् बहिर् नीत्वा शूलम् आरोप्य मारयत, इति घातकान् आहूयाऽवदत्। तथा हि—

संवर्धनं च साधूनां दुष्टानां मर्दनं तथा।
राजधर्मं बुधाः प्राहुर् दण्ड-नीति-विचक्षणाः ॥१॥

ततो राजाऽऽज्ञया घातक-पुरुषैस् त्रयश् चौराः शूलम् आरोप्य हताः। चतुर्थेन चिन्तितम्, यत्—

प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।
उपाये सफले रक्षा भवत्येव न संशयः ॥ २ ॥

इत्यवधार्य स चौर आह—रे रे घातकाः पुरुषाः! त्रयश्चौराः युष्माभिर् हता एव। इदानीं राजाऽग्रे मद्-वचनं श्रावयित्वा माम् अपि मारयत। अहम् एकां महतीं विद्यां जानामि। मयि

हतेऽसावस्तं यास्यति। राजा तु तां गृहीत्वा मां मारयतु। येने(न इ)यं विद्या मर्त्य लोके तिष्ठेत्, यतः—

येन कल्पयति वृत्तिं येन च प्रशस्यते लोके।
स गुणस् तेन गुणिना रक्ष्यः संवर्धनीयश् च ॥३॥

घातकाः—रे चौर! पुरुषाऽधम!! वध-स्थानम् आनीतोऽसि। किम् अतोऽपि जीवितुम् इच्छसि? कथय, कां विद्यां जानासि? कथं वा तवाऽधमस्य विद्या भूपालेन ग्रहीतव्या स्यात्?

चौरः—हे घातकाः! किं ब्रूथ, यूयं किं राज-कार्य-बाधां कर्तुम् इच्छथ? यदि राजा ज्ञास्यति, तदाऽवश्यं तेन ग्रहीतव्या महतीऽयं विद्या। किञ्च, अपूर्व-विद्या-वार्ता-कथकेभ्यो युष्मभ्यम् अपि प्रभुणा प्रसादः कर्तव्यः।

ततस् तस्य चौरस्य वचनैः स्वामि-कार्याऽनुरोधेन सा वार्ता राज्ञे निवेदिता। राजा च कौतुकम् आकर्ण्य चौरम् आहूय पप्रच्छ।

राजा—रे कां विद्यां जानासि? यद्-अर्थं विज्ञापयसि।

चौरः—देव! सुवर्ण-कृषिं जानामि।

राजा—का परि-पाटी?

चौरः—देव! सर्षप-परिमाणानि सुवर्ण-बीजानि कृत्वा परिष्-कृत-भूमावु(औ उ)प्यन्ते। तत्र मास-मात्रेण सर्षप-सदृश्यः कन्दल्यः प्ररोहन्ति। तद् देवस् तथा कृत्वा प्रत्यक्षं करोतु।

राजा—अपि सत्यम् एतत्?

चौरः—किं देवस्य पुरतोऽपि कस्यचिद् असत्य-भाषणे शक्तिः। अथ यदि मम वचनं व्यभिचरिष्यति तदा मासाऽन्तेऽपि ममाऽन्तो भविष्यति। तदाऽपि देवः शास्ति-करणे प्रभुर् एव।

राजा—भद्रम्, वप सुवर्णम्।

ततश् चौरः सुवर्णं दाहयित्वा सर्षप-मात्राणि च बीजानि कृत्वा राजाऽन्तःपुर-सरसस् तटे परम-निगूढ-स्थाने भू-परिष्कारं कृत्वा राजानं बभाषे।

चौरः—देव! क्षेत्र-बीजे संपन्ने वप्ता कश्चिद् दीयताम्।

राजा—चौर! त्वम् एव किं न वपसि?

चौरः—महाराज! यदि सुवर्ण-वपने ममाऽधिकारोऽभविष्यत्, तदा किम् अर्थम् अहम् एवं चौर्य-कर्मणि प्रवृत्तोऽभविष्यम्। किन्तु देव! सुवर्ण-वपने चौरस्याऽधिकारो नैवाऽस्ति। येन कदाऽपि किम् अपि न चौरितम् अस्ति, स एव खलु इमानि सुवर्ण-बीजानि वपतु ने(न इ)तर इति। तद् देव एव किं न वपति?

राजा—मयाऽपि चारणेभ्यो दातुं बाल्ये तात-चरणानां धनं चोरितम्।

चौरः—इमे तर्हि मन्त्रिणो वपन्तु।

मन्त्रिणः—रे! वयं राजो(ज-उ)पजीविनः कथम् अस्तेयिनो भवामः।

चौरः—तत् तर्हि धर्माऽधिकारी वपतु।

धर्माऽध्यक्षः—मयाऽपि बाल्याऽवस्थायां मातुर् मोदकाश् चोरिताः।

चौरः—यदि यूयम् सर्वेऽपि चौरास् तर्हि कथम् अहम् एव केवलो मारणीयोऽस्मि । किम् एष न्यायो यत् समानाऽपराध-कर्तृषु एकस्य प्राण-दण्ड इति ।

ततस् तच् चौर-वचनं श्रुत्वा सभा-सदः सर्वेऽट्टहासं जहसुः । राजाऽपि हास्य-रसाऽपनीत-क्रोधो विहस्याऽब्रवीत् ।

राजा—रे चौर ! इदानीं न त्वं मारणीयोऽसि । हे मन्त्रिणः ! कुबुद्धिर् अपि बुद्धिमान् अयं चौरो हास्य-रस-प्रवीणः । अतः परं मम एव संनिधाने तिष्ठतु अयम् । प्रस्तावे मां हासयतु मोदयतु च । एवं स चतुरश् चौरो राज्ञा स्व-संनिधाने धृतः ।

न चौराद् अधमः कश्चित् स च हासेन विद्यया ।
मृत्यु-पाशंश् छिच्छिद्य राज्ञो वल्लभतां गतः ॥४॥

अभ्यास

१—इस कथा को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—निम्नलिखित पदों का अर्थ लिखो-

सन्धिद्वारि । प्रत्यासन्ने । सुवर्णकृषिं । तातचरणानाम् ।

३—नीचे लिखे पदों में सन्धि-छेद करो-

इत्येषा । मत्तोऽपि । तद्देवः । नैवास्ति । ममैव ।

४—नीचे लिखे समासों के विग्रह-वाक्य लिखोः-

राजधर्मम् । परिष्कृतभूमौ । सुवर्णवपने । सर्वोत्कृष्टम् ।

द्वादशः पाठः

वृद्धस्य व्याघ्रस्य

अहम् एकदा दक्षिणाऽरण्ये चरन् अपश्यं यद् एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुश-हस्तः सरस्-तीरे स्थितो ब्रूते—भो भोः पान्थाः! इदं सुवर्ण-कङ्कणं गृह्यताम्। तद्-वचनम् आकर्ण्य भयात् कोऽपि तत् पार्श्वं न भजते। ततो लोभाऽऽकृष्टेन केनचित् पान्थनाऽऽलोचितम्—भाग्येनै(न ए)तत् संभवति। ततः (प्रकाशम् आह—) कुत्र तत् कङ्कणम्?

व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति।

पान्थोऽवदत्—कथं माराऽऽत्मके त्वयि विश्वासः।

व्याघ्र उवाच—शृणु रे पान्थ! प्राग् एव यौवन-दशायाम् अतिदुर्वृत्त आसम्। अनेक-गो-ब्राह्मण-मनुष्य-वधान् मे पुत्रा मृता दाराश् च, वंश-हीनश् चाऽहम्। ततः केनाऽपि धार्मिकेणाऽहम उपदिष्टः, दान-धर्माऽऽदिकं चरतु भवान्।

तद्-उपदेशाद् इदानीम् अहं स्नान-शीलो दाता वृद्धो गलित-नख-दन्तो न कथं विश्वास-भूमिः, यतः—

> इज्याऽध्ययन-दानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
> अ-लोभ-इति मार्गोऽयं धर्मस्याऽष्ट-विधः स्मृतः॥२॥

मम च एतावाँल् लोभ-विरहो येन स्व-हस्त-गतम् अपि

सुवर्ण-कङ्कणं यस्मै कस्मै-चिद् दातुम् इच्छामि। तथाऽपि व्याघ्रो मानुषं खादतीऽति लोक-प्रवादो दुर्-निवारः। मया च धर्म-शास्त्राण्य(णि अ)धीतानि—शृणु,

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानाम् अपि ते तथा।
आत्मौ(त्म-औ)पम्येन सर्वत्र दयां कुर्वन्ति साधवः ॥३॥

अपरं च—

मातृवत् पर-दारेषु पर-द्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्व-भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥४॥

त्वं चाऽतीव दुर्-गतस् तेन तुभ्यम् इदं कङ्कणं दातुं स-यत्नोऽहम्। तथा चोक्तम्—

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छे(च्छ ई)श्वरे धनम्।
व्याधितस्यौ(स्य औ)षधं पथ्यं नी-रुजस्य किम् औषधैः ॥५॥

तद् अत्र सरसि स्नात्वा सुवर्ण-कङ्कणं गृहाण। ततो यावद् असौ तद्-वचः-प्रतीतो लोभात् सरः स्नातुं प्रविशति, तावन् महा-पङ्के निमग्नः पलायितुम् अक्षमो जातः।

पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत्—अहह! महा-पङ्के पतितोऽसि। अतस् त्वाम् अहम् उत्थापयामि, इत्युक्त्वा शनैर् उपगम्य तेन-व्याघ्रेण धृतः पान्थोऽचिन्तयत्—

न धर्म-शास्त्रं पठतीऽति कारणम्
न चाऽपि वेदाऽध्ययनं दुर्-आत्मनः।

स्वभाव एवाऽत्र तथाऽतिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥

तन् मया शोभनं न कृतम्, यद् अत्र माराऽऽत्मके विश्वासः कृतः। तथाहि उक्तम्—

नदीनां शस्त्र-पाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राज-कुलेषु च ॥

इति चिन्तयन्न् एवाऽसौ व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश् च। अतः सर्वथाऽविचारितं कर्म न कर्तव्यम्।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों में संधि-छेद करो-

सरस्तीरे। नायाति। भाग्येनैतत्। धार्मिकेनोपदिष्टः।

३—अधोलिखित पदों के शब्द, विभक्ति तथा वचन बताओ-

नखिनाम्। एतावान्। तुभ्यम्। गुणान्। असौ।

४—नीचे लिखे पदों का केवल अर्थ लिखो-

दुर्वृत्तः। प्रसार्य। पान्थेन। इज्या। लोकप्रवादः। अभीष्टः। नीरुजस्य।

५—नीचे लिखे समस्त पदों के विग्रह-वाक्य लिख कर समासों के नाम भी लिखो-

लोभाकृष्टः। गलितनखदन्तः। सयत्नः।

त्रयोदशः पाठः

वधिरस्य

कोऽपि वधिरः स्व-मित्रं ज्वराऽऽर्तं श्रुत्वा तं द्रष्टुम् इच्छन् गृहात् प्रस्थितः। मार्गे गच्छन् मनस्ये(सि ए)वम् अचिन्तयत्। यन् मित्र-सकाशं गत्वा पूर्वम् अयि ! सह्यो ज्वर-वेगः, इति पृच्छेयम्। किंश्चिद् इव सह्यः, इति स प्रतिवदेत्। ततोऽहं तं वदिष्यामि—भगवतः प्रसादेन तथैव वर्तताम् इति।

पुनः किम् औषधं सेवसे, इति मया पृष्टे स कथयिष्यति इदम् औषधं सेवे, तदाऽहं तद् एव भद्रतरम्, इति वक्ष्यामि। अनन्तरं, कस् ते चिकित्सकः, इति प्रवक्ष्यामि। असौ मम चिकित्सकः, इत्ये(इ ए)वोत्तरं स दास्यति। अहं च 'स एव श्रेयान् तं मा परित्यज, इत्थं तदनुरूपं संभाष्य मित्रं चाऽऽपृच्छ्य स्वगृहं प्रत्यागमिष्यामि।

एवं चिन्तयन् स वधिरः मित्रं प्राप्य साऽऽदरम् अपृच्छत्—
मित्र ! अपि सह्यो ज्वरा-वेग इति ?

ज्वराऽऽर्तः—तथैव वर्तते।

वधिरः—भगवतः प्रसादेन तथैव वर्तताम्। किम् औषधं सेवसे ?

ज्वराऽऽर्तः—ममौ(म औ)षधं मृत्तिकैव।

वधिरः—तद् एव भद्रतरम्।

वधिरः—कस् ते चिकित्सकः ?

ज्वराऽऽर्तः—(सकोपम्) मम वैद्यो यम एव ।

बधिरः—स एव श्रेयान्, तं मा परित्यज ।

इत्थं प्रति-कूलानि प्रति-वचनानि श्रुत्वा स रोगी दुः-सहेन कोपेन समाविष्टः परिजनम् आदिशत्—भोः किम् अयम् एवं क्षते क्षारं प्रक्षिपति, निःसार्यताम् अयम् अर्ध-चन्द्र-दानेन । एवं स मूढः परिजनेन गल-हस्तिकया बहिर् निष्कासितः ।

साधूऽक्तम्—

परो(र-उ)क्तं साध्व(धु अ)नाकर्ण्य न युक्तं प्रतिभाषितुम् ।
बहिर् निष्कासितः कोऽपि बधिरः प्रतिकूल-वाक् ॥१॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—निम्नलिखित पदों में संधि-छेद करोः-

कोऽपि । ज्वराऽऽर्तम् । मनस्येवम् । तदेव । प्रत्यागमिष्यामि । तथैव । मृत्तिकैव ।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति, वचन अलग २ बताओ ।

मार्गे । मम । प्रसादेन । श्रेयान्

४—निम्नलिखित पदों में धातु, प्रत्यय अलग अलग दिखा कर अर्थ लिखोः—

श्रुत्वा । प्रस्थितः । प्रवक्ष्यामि । वर्तताम् । प्राप्य । आदिशत् ।

चतुर्दशः पाठः

शृगाली-सुत-सिंह-शावकानाम्

कस्मिंश्-चिद् देशे सिंह-दम्पती वसतः स्म । अथ सिंही पुत्र-द्वयम् अजीजनत् । सिंहोऽपि नित्यम् एव मृगान् व्यापाद्य सिंह्यै ददाति ।

अथाऽन्यस्मिन् अहनि तेन किमपि सत्त्वं नाऽऽसादितम् । येन भ्रमतोऽपि तस्य रविर् अस्तं गतः । ततस् तेन स्वगृहम् आगच्छता मार्गे शृगाल-शिशुर् एकः प्राप्तः । स च बालकोऽयम् इति अवधार्य यत्नेनै(न ए)नं दंष्ट्रा-मध्य-गतं कृत्वा सिंह्यै जीवन् एव समर्पितः । ततस् तया तथा-भूतं दृष्ट्वा सिंह्याऽभिहितम् । भोः कान्त, किं त्वयाऽद्य नाऽऽनीतम् अस्मत्-कृते किञ्चिद् भोजनम् ? सिंह आह—प्रिये, मयाऽद्ये(द्य ए)नं शृगाल-शिशुं विहाय नाऽन्यत् किञ्चिद् अपि सत्त्वम् आसादितम् । सोऽयं मया बाल इति मत्वा न व्यापादितः । विशेषतः स्वजातीयश् च इत्यवधार्य रक्षितः ।

उक्तं च यथा—

स्त्री-विप्र-लिङ्गि-बालेषु प्रहर्तव्यं न कर्हि-चित् ।
प्राण-त्यागेऽपि संजाते विश्वस्तेषु विशेषतः ॥१॥

इदानीं त्वम् एनं भक्षयित्वा पथ्यं कुरु । प्रभातेऽन्यत् किञ्चिद् उपार्जयिष्यामि । यतः—

वृद्धौ च माता-पितरौ साध्वी भार्या प्रियः शिशुः ।
अप्य(पि अ)कार्य-शतं कृत्वा भर्तव्या मनुर् अब्रवीत् ॥२॥

इति श्रुत्वा सिंही प्राऽऽह—भोः कान्त, यदि त्वया बालोऽयम् इति विचिन्त्य न हतः । तत्कथम् अहम् एनं शिशुं स्वो(स्व-उ)दराऽर्थं विनाशयामि । उक्तं च—

अ-कृत्यं नैव कर्तव्यं प्राण-त्यागेऽप्यु(पि उ)पस्थिते ।
कृत्यं नैव परित्याज्यम् एष धर्मः सनातनः ॥ ३॥

तस्मान् ममाऽयं तृतीयः पुत्रो भविष्यति । इति एवम् उक्त्वा सा तम् अपि शृगाली-सुतं स्व-स्तन-क्षीरेण परां पुष्टिम् अनयत् । ते त्रयोऽपि शिशवः परस्परम् अज्ञात-जाति-विशेषाः समानाऽऽचार-विहाराः बाल्य-कालं निर्वाहयन्ति ।

अथ कदाचित् तत्र वने भ्रमन् कोऽप्य(पि अ)रण्य-गजः समायातः । तं दृष्ट्वा सिंह-सुतौ द्वौ अपि कुपिताऽऽननौ यावत् तं प्रति प्रचलितौ, तावत् तेन शृगाली-सुतेनाऽभिहितम्—'अहो, गजोऽयं युष्मत्-कुल-शत्रुः । तन् न गन्तव्यम् अस्याऽभिमुखम्' । एवम् उक्त्वा स गृहं प्रधावितः ।

ताव(तौ अ)पि ज्येष्ठ-भ्रातृ-भङ्गात् निरुत्साहतां गतौ तम् अनु-धावितौ । अथवा, साध्वि(धु इ)दम् उच्यते—

एकेनाऽपि सु-धीरेण सो(स-उ)त्साहेन रणं प्रति ।
सो(स-उ)त्साहं जायते सैन्यं भग्ने भङ्गम् अवाप्नुयात् ॥४॥

अथ द्वौ अपि सिंह-सुतौ गृहं प्राप्य पित्रोर् अग्रतो विहसन्तौ ज्येष्ठ-भ्रातृ-विचेष्टितम् ऊचतुः । यथा गजं दृष्ट्वा दूरतोऽपि नष्टः । सोऽपि तत्र-स्थः शृगाली-सुतस् तद् आकर्ण्य कोपाऽऽविष्ट-मनाः, प्रस्फुटिताऽधर-पल्लवः, ताम्र-लोचनः, तौ सिंही-सुतौ निर्भर्त्सयन् परुषतर-वचनानि उवाच ।

ततः सिंह्याऽसावे(सौ ए)कान्ते नीत्वा प्रबोधितः—'वत्स ! मैं(मा ए)वं कदाचिद् जल्प । भवदीय-लघु-भ्रातरावे(रौ ए)तौ ।

अथाऽसौ प्रभूत-तर-कोपाऽऽविष्टः ताम् उवाच—किम् अहम् एताभ्यां शौर्येण, रूपेण, विद्यया, कौशलेन वा हीनो येन माम् उपहसतः । तन् मयाऽवश्यम् एतौ व्यापादनीयौ ।

तदाऽऽकर्ण्य सिंही तस्य जीवनम् इच्छन्ती अन्तर् विहस्य प्राह—

शूरोऽसि कृत-विद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक ।
यस्मिन् कुले त्वम् उत्पन्नो गजस् तत्र न हन्यते ॥५॥

तत् सम्यक् शृणु वत्स ! त्वं शृगाली-सुतः मया स-करुणया निज-स्तन्येन पुष्टिं नीतः । तद् यावद् एतौ मत्-पुत्रौ शिशुत्वात् त्वां शृगालं न जानीतः, तावद् द्रुत-तरं गत्वा स्व-जातीयानां मध्ये भव । नो चेद् आभ्यां हतस् त्वं मृत्यु-पथं समेष्यसि ।

सोऽपि तद्-वचनं श्रुत्वा भय-व्याकुल-मनाः शनैः शनैर् अपसृत्य जात्या मिलितः ।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति, वचनों का विवेचन करो:-

अहनि। मया। तेषु। द्वौ। यस्मिन्।

३—नीचे लिखे क्रिया-पदों के काल, पुरुष, वचन लिख कर वाक्यों में प्रयुक्त करो-

पालयिष्यामि। नाशयामि। भविष्यति। आप्नुयात्। जानामि।

४—नीचे लिखे पदों का केवल अर्थ लिखो—

व्यापाद्य। अवधार्य। अस्मत्कृते। कर्हिचित्। स्वोदरार्थम्। प्रधावितः।

५—नीचे लिखे समस्त पदों के विग्रहवाक्य लिखो-

सिंहदम्पती। दंष्ट्रामध्यगतम्। प्राणत्यागः। शृगालीसुतः। कृतविद्यः।

पञ्चदशः पाठः

सिंह-शशकयोः

अस्ति मन्दर-नाम्नि पर्वते दुर्दान्तो नाम सिंहः। स च सर्वदा पशूनां वधं कुर्वन्न् आस्ते। ततः सर्वैः पशुभिर् मिलित्वा स सिंहो विज्ञप्तः। देव! किम्-अर्थम् एकदा बहु-पशु-घातः क्रियते? यदि प्रसादो भवति तदा वयम् एव भवद्-आहारार्थं प्रत्य(ति-अ)हम् एकं पशुम् उपढौकयामः।

सिंहेनो(न उ)क्तम्—यद्ये(दि ए)तद् अभिमतं भवताम्, तर्हि भवतु तत्। ततः प्रभृति प्रत्य(ति-अ)हम् एकै(क-ए)कं पशुम् उपकल्पितं भक्षयन्न् आस्ते।

अथ कदाचिद् वृद्ध-शशकस्य वारः समायातः। सोऽचिन्तयत्—

त्रास-हेतोर् विनीतिस् तु क्रियते जीविताऽऽशया।
पञ्चत्वं चेद् गमिष्यामि किं सिंहाऽनुनयेन मे ॥१॥

तन् मन्दं मन्दम् उपगच्छामि। इति स विलम्बेन तत्र प्राप्तः। ततः सिंहोऽपि क्षुधा-पीडितः कोपात् तम् उवाच—रे, कुतस् त्वं विलम्ब्य समागतोऽसि?

शशकोऽब्रवीत्—देव! नाऽहम् अपराधी। आगच्छन् पथि सिंहाऽन्तरेण बलाद् धृतः। तस्याऽग्रे पुनर्-आगमनाय शपथं कृत्वा स्वामिनं निवेदयितुम् अत्राऽऽगतोऽस्मि। इति श्रुत्वा

सिंहः स-कोपम् आह—रे सत्वरं गत्वा तं दुर्-आत्मानं दर्शय। क्व स दुर्-आत्मा तिष्ठति।

ततः शशकस् तं गृहीत्वा गम्भीर-कूपं दर्शयितुं गतः। अत्रा-ऽऽगत्य स्वयम् एव पश्यतु स्वामी, इत्यु(ति उ)क्त्वा तस्मिन् कूप-जले तस्यैव प्रतिबिम्बं दर्शितवान्। ततोऽसौ क्रोधाऽऽध्मातो दर्पात् तस्यो(स्य उ)पर्या(रि आ)त्मानम् निक्षिप्य पञ्चत्वं गतः।

शोभनम् उक्तं केनाऽपि—

बुद्धिर् यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस् तु कुतो बलम्।
पश्य सिंहो मदो(द-उ)न्मत्तः शशकेन निपातितः ॥२॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों में संधि-कार्य समझाओ-

कुर्वन्न् आस्ते। प्रत्यहम्। विनीतिस् तु। बलाद् धृतः। अत्राऽऽगत्य।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति, वचन बताओ-

मन्दरनाम्नि। अपराधी। स्वात्मानम्। निर्बुद्धेः।

४—निम्नलिखित पदों में धातु, प्रत्यय और विभक्ति का अर्थ दिखाओ-

क्रियते। गृहीत्वा। निक्षिप्य। गतः। पश्य।

५—नीचे लिखे समस्तपदों में विग्रह बताओ-

सर्वपशुवधः। वृद्धशशकस्य। क्रोधाध्मातः।

षोडशः पाठः

लुब्धक-कपोतानाम्

अस्ति गोदावरी-नद्यास् तटे विशालः शाल्मली-तरुः। तत्र नाना-दिग्-देशाद् आगत्य रात्रौ बहवः पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ कश्-चिद् व्याधस् तत्र समायातः। तेन व्याधेन तण्डुल-कणान् विकीर्य जालं विस्तीर्णम्। स्वयं च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। अत्राऽन्तरे चित्र-ग्रीवो नाम कपोत-राजः स-परिवारो वियति विसर्पंस् तांस् तण्डुल-कणान् अवलोकयामास। ततः कपोत-राजस् तण्डुल कण-लुब्धान् कपोतान् प्रत्या(ति आ)ह 'कुतोऽत्र निर्-जने वने तण्डुल-कणानां संभवः, इति। तन् निरूप्यतां तावद्। भद्रम् इदं न पश्यामि। एतत् तद्-वचनं श्रुत्वा कश्-चित् कपोतः स-दर्पम् आह—आः, किम् एवम् उच्यते! भू-तलेऽस्मिन् शङ्काभिः सर्वम् आक्रान्तम्।

ईर्ष्यी घृणी त्व(तु अ)सन्तुष्टः क्रोधनो नित्य-शङ्कितः।
पर-भाग्यो(ग्य-उ)पजीवी च षड् एते दुःख-भागिनः॥१॥

इति तद्-वचनं श्रुत्वा सर्वे कपोतास् तत्रो(त्र उ)पविष्टाः। यतः बहु-श्रुता अपि नरा लोभ-मोहिताः क्लिश्यन्ते।

उक्तं च—

लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते।
लोभात् मोहश् च नाशश् च लोभः पापस्य कारणम्॥२॥

अनन्तरं सर्वे जालेन बद्धा बभूवुः। ततो ऽस्य वचनात् तत्रा ऽवलम्बितास् तं सर्वे तिरस्-कुर्वन्ति।

ततस् तस्य तिरस्-कारं श्रुत्वा स कपोत-राज उवाच—बालिशाः यूयं न जानीथ, ना ऽयम् अस्य दोषः। यतः—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणाम् अ-संयमः।
तज्-जयः संपदां मार्गो येने(न इ)ष्टं तेन गम्यताम् ॥३॥

विपत्-काले विस्मयः कापुरुषस्यै(स्य ए)व लक्षणम्। तद् अत्र धैर्यम् अवलम्ब्य प्रतीकारश् चिन्त्यताम्। यतो हि—

तावद् भयस्य भेतव्यं यावद् भयम् अनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथो(था-उ)चितम् ॥४॥

विस्मयः परिहर्तव्यः सर्व-कार्य-विनाशकः।
भयस्य पूर्व-रूपत्वाद् अन्त-कारी भवेद् ध्रुवम् ॥५॥

षड् दोषाः पुरुषेणे(ण इ)ह हातव्या भूतिम् इच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घ-सूत्रता ॥६॥

इदानीम् अप्ये(पि ए)वं क्रियताम्—सर्वैर् एकचित्ती-भूय जालम् आदायो(य उ)ड्डीयताम्। यतः—

अल्पानाम् अपि वस्तूनां संहतिः कार्य-साधिका।
तृणैर् गुणत्वम् आपन्नैर् बध्यन्ते मत्त-दन्तिनः ॥७॥

अपि च—

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्व-कुलैर् अल्पकैर् अपि ।
तुषेणाऽपि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥८॥

इत्या(ति आ)कर्ण्य पक्षिणः सर्वे जालम् आदायो(य उ)त्-पतिताः। अनन्तरं सु-दूराद् एव स व्याधस् तान् जालम् आदायो(य उ)ड्डीयमानान् पक्षिणोऽवलोक्य पश्चात् प्रधावन्न् एवम् अचिन्तयत्—

यदै(दा ए)ते विवदिष्यन्ति निपतिष्यन्ति वै भुवि ।
तदा मे वशम् एष्यन्ति संमुखो यदि स्याद् विधिः ॥९॥

ततस् तेषु चक्षुर्-विषयाऽति-क्रान्तेषु पक्षिषु स व्याधो निराशी-भूय निज-गृहं प्रति निवृत्तः । अथ निवृत्तं लुब्धकं दृष्ट्वा कपोता ऊचुः—किम् इदानीं कर्तुम् उचितम् । चित्र-ग्रीव उवाच—

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् ।

तद् अस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषिक-राजश् चित्र-वने निवसति । सोऽस्माकं पाशांश् छेत्स्यति—इत्या(ति आ)-लोच्य सर्वे ते हिरण्यक-विवर-समीपं गताः । ततो हिरण्यकः कपोताऽवपात-भयाच् चकितस् तूष्णीं स्थितः ।

अथ चित्रग्रीव उवाच—सखे हिरण्यक ! किम् अस्मान् न संभाषसे ? ततो हिरण्यकस् तद्-वचनं प्रत्यभिज्ञाय स-संभ्रमं बहिर् निःसृत्याऽब्रवीत् ।

आः, पुण्यवान् अस्मि, प्रिय-सुहृन् मे चित्रग्रीवः समा-यातः । पुनः पाश-बद्धांश् चै(च ए)तान् विलोक्य साऽऽश्चर्यम् अपृच्छत्—सखे ! किम् एतत् ?

चित्रग्रीवोऽवदत्—मित्र !

रोग-शोक-परीतापा बन्धनं व्यसनानि च ।
आत्माऽपराध-वृक्षाणां फलान्ये(नि ए)तानि देहिनाम् ॥११॥

ततो हिरण्यकश् चित्र-ग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं प्रवृत्तः ।

चित्रग्रीव आह—सखे ! नै(न ए)तद् उचितम् । अस्मद्-आश्रितानाम् एषाम् तावत् पाशांश् छिन्धि, पश्चान् ममाऽपि छेत्तव्यानि । इत्या(ति आ)कर्ण्य हिरण्यकोऽब्रूत—मित्र ! अहम् अल्प-शक्तिः, दन्ताश् मे कोमलाः । तद् एतद् एतेषां पाशांश् छेत्तुं कथम् अहम् समर्थः स्याम् । तद् यावन् मे दन्ताः न त्रुट्यन्ति तावत् तव पाशांश् छिनद्मि, पश्चाद् एतेषाम् अपि बन्धनं यावच्-शक्यं छेत्स्यामि ।

चित्रग्रीवोऽवदत्—अस्त्वे(स्तु ए)वम्, तथाऽपि यथा-शक्त्ये-(क्ति ए)तेषां बन्धनं खण्डय । नाऽहं स्वाऽऽश्रितानाम् एषां दुःखानि सोढुं समर्थः । यतः—

धनानि जीवितं चै(च ए)व परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्-निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥१२॥

अपरश् चाऽयम् अ-साधारणो हेतुः—

जाति-द्रव्य-गुणानां च साम्यम् एषां मया सह ।
मत्-प्रभुत्व-फलं ब्रूहि कदा किं तद् भविष्यति ॥१३॥

तथा च—

राजा तुष्टोऽपि भृत्यानां मान-मात्रं प्रयच्छति ।
ते तु संमानितास् तस्य प्राणैर् अप्यु(पि उ)पकुर्वते ॥१३॥

इत्याकर्ण्य प्रहृष्ट-मना हिरण्यकः पुलकितः सन् अब्रवीत्, साधु, मित्र, साधु, अनेनाऽऽश्रित-वात्सल्येन त्रैलोक्यस्याऽपि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते। यतः—

समो भृत्येषु पुत्रेषु मित्रेषु चाऽपि यो नरः।
प्रजासु चाऽविशेषेण राजा भवितुम् अर्हति ॥ १४ ॥

एवम् उक्त्वा तेनै(न ए)तेषां सर्वेषाम् अपि वन्धनानि छिन्नानि। छिन्न-वन्धनास् ते तम् अभिनन्द्य यथाऽभिलषित-प्रदेशं गताः। शोभनम् उक्तम्—

यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च।
पश्य मूषिक-मित्रेण कपोताः मुक्त-बन्धनाः ॥ १६ ॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—अधोलिखित पदों के शब्द, धातु, प्रत्यय आदि का विचार करते हुए अर्थ समझाओ—

शाल्मली-तरुः। अवसन्नायाम्। विकीर्य। प्रच्छन्नो भूत्वा। वियति विसर्पन्। निरूप्यताम्। परभाग्योपजीवी। कार्यविपत्तिः। गुणत्वम् आपन्नैः। उपागच्छन्। प्रत्यभिज्ञाय। यावच्छक्यम्। सन्निमित्ते। मत्प्रभुत्वफलम्। यथाभिलषितम्।
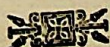
सप्तदशः पाठः

मृग-काक-शृगालानाम्

अस्ति मगध-देशे चम्पकवती नामाऽरण्यानी, तस्यां चिरान् महता स्नेहेन मृग-काकौ निवसतः । तयोर् मृग एकदा स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्ट-पुष्टाऽङ्गः केनाऽपि शृगालेनाऽवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्—

आः, कथम् एतन्-मांसं सु-ललितं भक्षयामि ? भवतु, विश्वासं तावद् उत्पादयामि । यतः—

विश्वासाद् वशम् एष्यन्ति बुद्धि-मन्तोऽपि वै यतः ।
पशु-स्त्री-बाल-मूर्खाणां वशे किं नाम पौरुषम् ॥१॥

इ(ति आ)त्यालोच्यो(च्य उ)पसृत्याऽब्रवीत्—मित्र ! कुशलं ते ।

मृगेणो(ण उ)क्तम्—कस् त्वम् ?

स ब्रूते—क्षुद्र-बुद्धि-नामा जम्बुकोऽहम् । अत्राऽरण्ये मित्र-बन्धु-हीनो मृतवद् एकाकी निवसामि। इदानीं भवन्तं मित्रम् आसाद्य पुनः स-बन्धुर् जीव-लोकं प्रविष्टोऽस्मि। अद्याऽऽरभ्य मया तवाऽनुचरेण सर्वदा भवितव्यम् ।

मृगेणोक्तम्—एवम् अस्तु ।

ततोऽस्तं गते सवितरि ताव् उभाव् अपि मृगस्य वास-भूमिं गतौ । तत्र चम्पक-वृक्ष-शाखायां सुबुद्धि-नामा काको

मृगस्य चिर-मित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत्, सखे चित्राऽङ्ग! कोऽयं द्वितीयः?

मृगेणो(ण उ)क्तम्—जम्बुकोऽयं क्षुद्र-बुद्धि-नामा, अस्मत्-सख्यम् इच्छन्न् अत्राऽऽगतः।

काको ब्रूते—मित्र! अकस्माद् आगन्तुना सह मैत्री न युक्ता। तन् न त्वया शोभनम् आचरितम्।

इत्या(ति आ)कर्ण्य जम्बुकः स-कोपम् आह—भो मृगस्य प्रथम-दर्शन-दिने भवान् अपि सर्वथाऽज्ञात-कुल-शील एवा-ऽऽसीत्। तद् भवता सह कथम् अद्य यावद् एतस्य स्नेहा-ऽनुवृत्तिर् उत्तरोत्तरं वर्धते।

यत्र विद्वज्-जनो नाऽस्ति श्लाघ्यस् तत्राऽल्प-धीर् अपि।
निरस्त-पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥ १ ॥

अपि च—

अयं निजः परो वेति गणना लघु-चेतसाम्।
उदार-चरितानां तु वसुधै(धा ए)व कुटुम्बकम् ॥ २ ॥

यथा चाऽयं मृगो मम बन्धुस् तथा भवान् अपि।

मृगोऽब्रवीत्—सखे! किम् अनेन उत्तरो(र-उ)त्तरेण? सर्वैर् एकत्र विस्रम्भाऽऽलापैः सुखम् अनुभवद्भिः स्थीयताम्।

काकेनोक्तम्—एवम् अस्तु।

अथ प्रभाते यथाऽभिमतं देशं गताः। एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते—सखे मृग! एतस्मिन्न् एव वनै(न-ए)कदेशे

सस्य-पूर्णं क्षेत्रम् एकम् अस्ति। तद् अहं त्वां तत्र नीत्वा दर्शयामि।

तथा कृते सति मृगः प्रत्य(ति अ)हं तत्र गत्वा सस्यं खादति। अथै(थ ए)कदा क्षेत्र-पतिना तद् दृष्ट्वा पाशास् तत्र नियोजिताः। अनन्तरं पुनर्-आगतो मृगस् तत्र चरन् पाशैर् बद्धोऽचिन्तयत्—को माम् इतः काल-पाशाद् इव व्याध-पाशात् त्रातुं मित्राद् अन्यः समर्थः।

अत्राऽन्तरे जम्बुकस् तत्राऽऽगत्यो(त्य उ)उपस्थितोऽचिन्तयत्—फलिता तावद् अस्माकं कपट-प्रबन्धेन मनोरथ-सिद्धिः। नूनम् एतस्यो(स्य उ)त्कृत्यमानस्य मांसाऽसृग्-अनुलिप्तान्य(नि अ)स्थीनि ममाऽवश्यं प्राप्तव्यानि।

स च मृगस् तम् आयान्तं दृष्ट्वो(ष्ट्वा उ)ल्लसितो ब्रूते—सखे ! छिन्धि तावन् मे बन्धनानि, स-त्वरं त्रायस्व च माम् इति। जम्बुकः पाशं मुहुर्-मुहुर् विलोक्याऽचिन्तयत्—दृढास् तावद् इमे बन्धाः। प्रकाशं ब्रूते—सखे ! स्नायु-निर्मिता एते पाशाः। तद् अद्य भट्टारक-वारे कथम् एतान् दन्तैः स्पृशामि ? मित्र ! यदि नाऽन्यथा मन्यसे, तदा प्रभाते यत् त्वया वक्ष्यते तन् मया कर्तव्यम्, इत्यु(ति उ)क्त्वा तत्-समीप एवाऽऽत्मानम् आच्छाद्य स्थितः।

अनन्तरं स काकः प्रदोष-काले मृगम् अनागतम् अवलोक्ये(क्य इ)तस्-ततोऽन्विष्य तथा-विधं दृष्ट्वो(ष्ट्वा उ)वाच—सखे ! किम् एतत् ?

मृगेणोक्तम्—मित्र ! अवधीरित-सुहृद्-वाक्यस्य फलम् एतत्, यत उक्तं हि—

दीप-निर्वाण-गन्धं हि सुहृद्-वाक्यम् अरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गताऽऽयुषः ॥३॥

काको ब्रूते—मित्र ! उक्तम् एव मया पूर्वम्—

परोक्षे कार्य-हन्तारं प्रत्यक्षे प्रिय-वादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विष-कुम्भं पयो-मुखम् ॥४॥

पुनश्च (दीर्घं निःश्वस्य) अरे वञ्चक ! किं त्वया पाप-कर्मणा कृतम् ? अथवा, स्थितिर् इयं दुर्जनानाम्—

दुर्जनः प्रिय-वादी च नै(न ए)तद् विश्वास-कारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाऽग्रे हृदये तु हलाहलम् ॥५॥

अथ प्रभाते स क्षेत्र-पतिर् लगुड-हस्तस् तं प्रदेशम् आ-गच्छन् काकेनाऽवलोकितः । तम् आलोक्य तेनोक्तम्—सखे ! त्वम् आत्मानं मृत-वत् संदर्श्य वातेनो(न उ)दरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ । यदाऽहं शब्दं करोमि, तदा त्वं स-त्वरम् उत्थाय पलायिष्यसे । ततो मृगस् तथैव काक-वचनेन स्थितः ।

ततः क्षेत्र-पतिना हर्षो(र्ष-उ)त्फुल्ल-लोचनेन तथा-विधो मृगोऽवलोकितः । तथा-विधं मृगम् अवलोक्य, आः, स्वयम् एव मृतोऽयम्, इत्युक्त्वा मृगं बन्धनाद् मोचयित्वा पाशान् संग्रहीतुं स-यत्नो बभूव ।

ततः कियद्-दूरेऽन्तरिते क्षेत्र-पतौ, स मृगः काकस्य शब्दं श्रुत्वा स-संभ्रमम् उत्थाय पलायितः।

अथ तम् उद्दिश्य क्षेत्र-पतिना स-कोपं क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो व्यापादितः। अतोऽहं ब्रवीमि—

भक्ष्य-भक्षकयोः प्रीतिर् विपत्तेर् एव कारणम् ।
शृगालात् पाश-बद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः ॥६॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों के शब्द, विभक्ति, और वचन दिखाओ—

महता। विश्वासात्। सवितरि। भवान्। प्रिय-वादिनम्।

३—निम्नलिखित पदों का केवल अर्थ लिखो—

जीव-लोकम्। जम्बुकः। आकर्ण्य। निरस्त-पादपे। अवधेयम्। उत्कृत्य। छिन्धि। मोचयित्वा।

अष्टादशः पाठः

काको(क-उ)लूकीयं वैरम्

अ-राजके सर्व-पक्षिणां विचारो जातः—कतमं पक्षिणां राजानम् अभिषिञ्चाम इति। यथा चो(च उ)क्तम्—

नाविकेन विना यद्-वद् नौर् मज्जति महाऽर्णवे ।
तथा राज्ञा विना सर्वाः प्रजा दुःख-महाऽर्णवे ॥१॥

ततस् तेषां मतम् उत्पन्नम्—उलूकोऽभिषिच्यताम् इति। तस्य यथा-विध्य(धि अ)भिषेको(क उ)चित-द्रव्य-संभारं कृत्वा छत्र-चामर-व्यजन-सिंहासन-भद्रपीठाऽऽदिनाऽभिषेकः प्राऽऽरब्धः।

अथ नभसा व्रजन्तम् अविज्ञात-नामानं पक्षिणम् अपश्यन्। तं च दृष्ट्वा स्तम्भिताऽभिषेकास् ते तम् आहूयाऽपृच्छन्—भद्र ! अ-राजका वयम्, अत एनम् उलूकं राज्याऽधिपत्वेऽभिषेक्तु-कामाः स्मः, तत् किम् एतत् तेऽभिरुचितम् अस्ति न वे(वा इ)ति ब्रूहि।

एवं पृष्टः स आह—भोः किम् अन्ये पक्षिणो हंस-कारण्डव-चक्रवाक-क्रौञ्च-मयूर-कोकिल-हारीत-जीव-जीवकाऽऽदय उत्सादं गताः ? येनाऽयम् अ-प्रसन्न-दृष्टिर् दिवाऽन्ध उलूको राज्येऽभिषिच्यते। अथ—

स्वभाव-रौद्रम् अत्यु(ति उ)ग्रं क्षुद्रम् अप्रिय-वादिनम् ।
उलूकम् अभिषिच्यै(च्य ए)नं न वः श्रेयो भविष्यति ॥२॥

क्षुद्रोऽयं दुर्-आत्मा न शक्तः प्रजाः पालयितुम् । सर्वथा-ऽप्य(पि अ)नाश्रयणीयगुणो(ण-उ)पेतोऽयम् । तत् किम् अनेन इति । तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, साध्व(धु अ)नेन भणितम् इति मत्वा अब्रुवन्—पुनर् एव समवायं कृत्वा महद् राज-कार्यं संप्रधारयिष्यामः । यतः—

'सहसा विदधीत न क्रियाम् अ-विवेकः परम् आपदां पदम्' ।

इत्यु((ति उ)क्त्वा सर्वेऽपि पक्षिणो यथाऽऽगतं गताः । तत्र केवलं भद्र-पीठ-गतोऽभिषेकाऽभि-मुखो दिवाऽन्धस् तिष्ठन् समचिन्तयत् । केन तावन् ममाऽयम् अभिषेको विघ्नितः । अ-काण्डे खल्व(लु अ)सौ वज्र-पातः कथं मया सह्यः ? अ-शस्त्र-वधोऽयं मे । कथं जानामि तं दुर्-आत्मानम् अकारण-वैरिणम् ? किं मयाऽपराद्धं तस्य ? इति मुहुर्-मुहुर् विचिन्तयतस् तस्य केनाऽप्या(पि आ)गत्य, 'वायसेन विघ्नितस् तेऽभि-षेकः' इति निवेदितम् । इत्थम् उपलब्ध-वार्त उलूकोऽन्तर्-दग्ध इव प्रकाशम् आह—रे ! भवता ममाऽभिषेके व्याघातः कृतः । अद्याऽऽरभ्याऽस्माकं भवतां च वैरम् उत्पन्नम्, इत्य(ति अ)भि-धाय समुज्झिताऽभिषेको दिवाऽन्धः स-लज्जं तत उत्थाय यथाऽऽगतं गतः ।

न क्षुद्रो राज्यम् अर्हतीऽति युक्तम् एतत् ।

द्वाविंशति-तमः पाठः

सीता-परित्यागः (१)

इत इतोऽवतरत्वा(तु आ)र्या ।

सूत्र-धारः—को न्व(नु अ)यम् ? (वि लोक्य) कष्टं भोः ! कष्टम् अतिकरुणं वर्तते—

लङ्केश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति
रामेण लोक-परिवाद-भयाऽऽकुलेन ।
निर्वासितां जन-पदाद् अपि गर्भ-गुर्वी
सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम् ॥१॥

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति रथाऽधिरूढा सीता सारथिर् लक्ष्मणश् च)

लक्ष्मणः—एष स्थितो रथः, तद् अवतरतु देवी ।

सीता—(अवतीर्य परिक्रामति)

लक्ष्मणः—सु-मन्त्र ! दीर्घ-मार्ग-परिश्रान्ता एते तुरङ्गमाः । तद् विश्रामय एतान् ।

सु-मन्त्रः—यद् आज्ञापयति देवः । (इति रथम् अधिरुह्य निष्क्रान्तः)

लक्ष्मणः—(आत्म-गतम्) समादिष्टोऽहम् आर्येण—'लक्ष्मण ! सीतां देवीं रथम् आरोप्य कस्मिंश्चिद् वनो(न-उ)द्देशे

परित्यज्य निवर्तस्व इति'। तद् अहम् अपि देवीं वनम् उपनयामि।

सीता—वत्स लक्ष्मण! कियद् दूरं भगवती भागीरथी वर्तते ?

लक्ष्मणः—आर्ये! आसन्नै(न्ना ए)व भगवती भागीरथी। संप्राप्ता एव वयम्। शनैः-शनैर् एतु मुहूर्तम् आर्या।

सीता—वत्स! सुष्ठु परिश्रान्ताऽस्मि। एतस्यां पादप-च्छायायां मुहूर्तम् उपविश्य विश्रमिष्यामि।

लक्ष्मणः—यद् अभिरुचितं देव्यै।

सीता—(उपविश्य विश्रान्ति नाटयति)

लक्ष्मणः—(आत्म-गतम्) एषा विश्रान्ता सुखो(ख-उ)पविष्टा च देवी। तद् अयम् एवाऽवसरो यथा-स्थितं व्यवसातुम्।

(सहसा पादयोर् निपत्य, प्रकाशम्) एष मन्दभागी लक्ष्मणो विज्ञापयति—स्थिरीक्रियतां हृदयम्।

सीता—(स-संभ्रमम्) अपि कुशलम् आर्य-पुत्रस्य ? अम्बया कैकेय्या पुनर् अपि समादिष्टो वन-वासः ?

लक्ष्मणः—समादिष्टो वन-वासः, न पुनर् अम्बया।

सीता—केन पुनः समादिष्टः ?

लक्ष्मणः—आर्येण।

सीता—किं न्वि(नु इ)दं वत्स ? परिस्फुटं कथय।

लक्ष्मणः—किम् अपरं कथयामि मन्द-भाग्यः।

त्यक्ता किल त्वम् आर्येण चारित्र-गुण-शालिना ।
मयाऽपि किल गन्तव्यं त्यक्त्वा त्वाम् इह कानने ॥२॥

सीता—हा हन्त ! (मोहं गच्छति, प्रत्यागम्य) वत्स लक्ष्मण ! किम् उपालभ्याऽस्मि परित्यक्ता ?

लक्ष्मणः—कीदृशो देव्या उपालम्भः ?

सीता—अहो मेऽधन्यत्वम् । किम् उपालम्भ-मात्रेण विना निगृहीताऽस्मि । किम् अस्ति, किम् अपि तेन संदिष्टम् ?

लक्ष्मणः—अस्ति ।

सीता—कथय कथय ।

लक्ष्मणः—अयम् आर्यस्य संदेशः ।

तुल्याऽन्वयेत्य(ति अ)नुगुणेति गुणो(ण-उ)न्नतेति
दुःखे सुखे च सुचिरं सहवासिनीति ।
जानामि केवलम् अहं जन-वाद-भीत्या
सीते ! त्यजामि भवतीं न तु भाव-दोषात् ॥३॥

सीता—कथं जनाऽपवाद-भयेनेति ? किम् अपि वचनीयं मेऽस्ति ?

लक्ष्मणः—कीदृशम् आर्याया वचनीयम् ?

ऋषीणां लोक-पालानाम् आर्यस्य मम चाऽग्रतः ।
अग्नौ शुद्धिं गता देवी किन्तु.................
(लज्जां नाटयति)

सीता—कथय, 'किन्तु-

लक्ष्मणः—

लोको निर(र् अ)ङ्कुशः ॥४॥

लक्ष्मणः—कः प्रतिसंदेशः ।

सीता—कस्य ?

लक्ष्मणः—आर्यस्य ।

सीता—एवं गतेऽपि प्रतिसंदेशः । मम वचनाद् आर्य-पुत्रं विज्ञापय, यन् मन्दभागिनीं माम् अनुशोचन्न् आत्मानं न बाधय, सद्-धर्मे स्व-शरीरे च साऽवधानो भवेति ।

अपि च, एषा तपो-वन-वासिनी, निर्-गुणाऽपि चिर-परिचितेति वा, अ-नाथेति वा, सीतेति वा, स्मरण-मात्रेणाऽनुग्रहीतव्या ।

लक्ष्मणः—

इमं संदेशम् आकर्ण्य क्षते क्षारम् इवाऽऽहितम् ।
दशाम् अ-सह्यां शोकस्य व्यक्तम् आर्यो गमिष्यति ॥५॥

सीता—वत्स लक्ष्मण ! आसन्नाऽस्तमयः सूर्यः । उड्डीनाः पक्षिणः । संचरन्ति श्वापदाः । गच्छ, न युक्तं परि-लम्बितुम् ।

लक्ष्मणः—(सोद्वेगम्)

आर्यां स्व-हस्तेन वने विमोक्तुं
श्रोतुं च तस्याः परिदेवितानि ।
सुखेन लङ्का-समरे हतं माम्
अजीवयद् मारुतिर् आत्त-वैरः ॥६॥

(परितो विलोक्य)

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश् च शोक-विधुराः करुणं रुदन्ति ।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्-गता वरम् अमी न परं मनुष्याः ॥७॥

अञ्जलिं वद्ध्वा, देवि ! सर्व-पश्चिमोऽयं लक्ष्मणस्य प्रणामाऽञ्जलिः । विज्ञापयामि देवीम्—

आर्यं मित्रं बान्धवान् वा स्मरन्त्या
शोकाद् आत्मा मृत्यवे नो(न उ)पनेयः ।
इक्ष्वाकूणां सन्ततिर् गर्भ-संस्था
से(सा इ)यं देव्या यत्नतो रक्षणीया ॥८॥

अपरं च—

ज्येष्ठस्य भ्रातुर् आदेशाद् आनीय विजने वने ।
परित्यक्ताऽसि देवि ! त्वं दोषम् एकं क्षमस्व मे ॥९॥

(दिशोऽवलोक्य) भो भो लोक-पालाः ! शृण्वन्तु भवन्तः—

एषा वधूर् दश-रथस्य महा-रथस्य
रामाऽऽह्वयस्य गृहिणी मधु-सूदनस्य ।
निर्वासिता पति-गृहाद् विजने वनेऽस्मिन्
एकाकिनी वसति रक्षत रक्षतै(त ए)नाम् ॥१०॥

एनाम् अपि रघु-कुल-देवतां भगवतीं भागीरथीम् आर्यायाः कृते विज्ञापयामि—

देवी यदै(दा ए)व सवनाय विगाहते त्वां
भागीरथि ! प्रशमय क्षणम् अम्बु-वेगम् ।
भूयो-भूयो याचते लक्ष्मणोऽयं
यत्नाद् रक्ष्या राज-पुत्री, गतोऽहम् ॥११॥

(प्रणम्य निष्क्रान्तः)

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो-

लङ्केश्वरस्य । लक्ष्मणोऽयम् । पादयोर्निपत्य । गुणोन्नतेति ।

३—नीचे लिखे पदों का अर्थ करो-

अ-धन्यत्वम् । प्रतिसन्देशः । परिदेवितानि । शोक-विधुराः ।

४—नीचे लिखे पदों का विग्रह बता कर समास का नाम लिखो-

पादपच्छाया । सुखोपविष्टा । जन-वाद-भीत्या । मधुसूदनस्य ।

५—नीचे लिखे पदों में विभक्ति और वचन समझाओ-

अम्बया । भवन्तः । एनाम् ।

त्रयोविंशति-तमः पाठः

सीता-परित्यागः (२)

सीता—कथं सत्यम् एव माम् एकाकिनीं परित्यज्य गतो लक्ष्मणः ? (विलोक्य) हा धिक् ! हा धिक् ! अस्तम् इतः सूर्यः । त्वरेणाऽपि लक्ष्मणो न दृश्यते । हरिणा अपि स्व-स्वम् आवासम् आयान्ति । निर्-मानुषं महाऽरण्यम् । किं करोमि मन्द-भाग्या (इति मोहं गच्छति) ।

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः)

वाल्मीकिः—(स-संभ्रमम्)

आकर्ण्य जह्नु-तनयां समुपागतेभ्यः
सन्ध्याऽभिषेक-विधये मुनि-दारकेभ्यः ।
एकाकिनीम् अ-शरणां रुदतीम् अरण्ये
गर्भाऽऽतुरां स्त्रियम् अतित्वरयाऽऽगतोऽस्मि ॥१॥

तद् यावत् ताम् एव अन्वेषयामि । अन्धकारेण रुध्यते दृष्टिर् इति सा न दृश्यते । अतः शब्दापयिष्ये । अहम् अहं भोः !

सीता—(प्रत्यागम्य) क एष मां शब्दापयते ? (स-हर्षम्) वत्स लक्ष्मण ! प्रतिनिवृत्तोऽसि ?

वाल्मीकिः—नाऽहं लक्ष्मणः ।

सीता—(आत्म-गतम्) अत्या(ति आ)हितम् ! अन्य एष को वा पुरुषः ? कथम् इदानीं वारयिष्यामि महाऽहितम्। (प्रकाशम्) स्त्री अहम् एकाकिनी च।

वाल्मीकिः—एष स्थितोऽस्मि। वत्से! तवाऽप्य(पि अ)लं पर-पुरुष-शङ्कया। मुनि-दारकेभ्यस् त्वद्-वृत्तान्तम् उपलभ्य तपो-धनोऽहं त्वाम् एवाऽनुग्रहीतुम् उपागतः। पृच्छामि चाऽत्रभवतीम्।

धर्मेण जित-संग्रामे रामे शासति मेदिनीम्।
कथ्यतां कथ्यतां वत्से ! विपद् एषा कुतस् तव ॥२॥

सीता—तत एव पूर्ण-चन्द्राद् मेऽशनि-निपातः।

वाल्मीकिः—कथं रामाद् एव हि विपत्तिम् उपागता ?

सीता—अथ किम्।

वाल्मीकिः—यदि त्वं वर्णाऽऽश्रम-व्यवस्थाभूतेन महा-राजेन निर्वासिता, ततः स्वस्ति भवत्यै, गच्छाम्य(मि अ)हम्।

(परिभ्रामति)

सीता—अथ भगवन्! विज्ञापयामि किंचित्।

वाल्मीकिः—कथय कथय, सज्जोऽस्मि श्रोतुम्।

सीता—यदि रघु-वरेण निर्वासितेति भवता नाऽनुकम्पनीया, एषा पुनर् गर्भ-गता रघु-सगर-दिलीप-दशरथ-प्रभृतीनां संततिर् इतीऽदानीं प्रतिपालनीया।

वाल्मीकिः—(प्रतिनिवृत्य) कथम् इक्ष्वाकु-वंशम् उदाहरति ? तद् अनुयोक्ष्ये। वत्से ! किं च दश-रथस्य वधूः ?

सीता—यद् भगवान् आज्ञापयति।

वाल्मीकिः—किं च विदेहाऽधिपतेर् जनकस्य दुहिता ?

सीता—अथ किम्।

वाल्मीकिः—किं च सीता ?

सीता—नहि सीता, भगवन् ! मन्द-भागिनी।

वाल्मीकिः—हा हतोऽस्मि मन्द-भाग्यः। किंकृतेऽयम् अत्र भवत्याः प्रासाद-तलाद् अधोऽवतारः ?

सीता—(लज्जां नाटयति)

वाल्मीकिः—कथं लज्जते। भवतु, योग-चक्षुषाऽहम् एवाऽवलोकयामि। (ध्यानम् अभिनीय) आं ज्ञातम्, जनाऽपवाद-भीरुणा रामेण केवलं परित्यक्ताऽसि न तु हृदयेन। निर्-अपराधा त्वम् अस्माभिर् अ-परित्याज्यैव, एह्या(हि आ)श्रम-पदं गच्छावः।

सीता—को नु भवान् ?

वाल्मीकिः—श्रूयताम्।

सोऽहं चिरन्तन-सखा जनकस्य राज्ञस्
तातस्य ते दश-रथस्य च बाल-मित्रम्।
वाल्मीकिर् अस्मि विसृजाऽन्य-जनाऽभिशङ्कां
नाऽन्यस् तवाऽयम् अ-बले श्वशुरः पिता च ॥३॥

सीता—भगवन् ! वन्दे ।

वाल्मीकिः—वीर-प्रसवा भव, भर्तुश् च पुनर्-दर्शनम् आप्नुहि ।

सीता—भगवन् ! त्वं लोकस्य वाल्मीकिः, मम पुनस् तात एव । तद् गच्छावः स्वाऽऽश्रम-पदम् ।

(इति निष्क्रान्तौ)

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—निम्नलिखित पदों का अर्थ लिखो-

अनुगृहीतुम् । निर्वासिता । किं-कृते ।

३—नीचे लिखे पदों के धातु और प्रत्ययों का निर्णय करो-

निवृत्य । श्रोतुम् । युक्तम् । बद्ध्वा ।

४—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन लिखो-

दुहिता । भवत्याः । ऋषीणाम् । एकाकिनी ।

चतुर्विंशति-तमः पाठः

दूत-वाक्यम् (१)

(सूत्र-धारः प्रविशति)

(नेपथ्ये)

भो भोः प्रतिहाराऽधिकृताः ! महा-राजो दुर्योधनः समाज्ञापयति ।

सूत्र-धारः—भवतु, विज्ञातम् ।

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह ।
मन्त्र-शालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाऽऽज्ञया ॥१॥

(निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहाराऽधिकृताः ! महा-राजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्य सर्व-पार्थिवैः सह मन्त्रयितुम् इच्छामि ।

तद् आहूयन्तां सर्वे राजान इति ।

(परिक्रम्याऽवलोक्य च)

अये ! अयं महा-राजो दुर्योधन इत एवाऽभिवर्तते ।

(ततः प्रविशति दुर्योधनः)

काञ्चुकीयः—जयतु महा-राजः । महाराज-शासनात् समानीतं राज-मण्डलम् ।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम्। प्रविश त्वम् अवरोधनम्।

काञ्चुकीयः—यद् आज्ञापयति महा-राजः।

(निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—आर्यवैकर्ण-वर्षदेवौ! उच्यताम्—अस्ति मम (मम ए)का-दशाऽक्षौहिणी-बल-समुदायः। अस्य कः सेना-पतिर् भवितुम् अर्हति! किम् आहतुर् भवन्तौ—अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्यः सेनापतिर् भवितुम् अर्हति, इति। भवतु, पितामह एव भवतु।

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों का पद-परिचय समझाओ-

भवतु। अद्य। राजानः। अत्रभवति। भवन्तौ।

३—नीचे लिखे पदों में विग्रह-वाक्य और समासों के नाम बताओ-

सेना-पतिः। महा-राजः। राज-मण्डलम्। सर्व-पार्थिवाः।

४—निम्न क्रियापदों में गण, धातु, लकार, पुरुष और वचन बता कर लङ् (भूतकाल) लकार के प्रथम और उत्तम पुरुष के रूप लिखो-

प्रविशति। भवतु। इच्छामि। अस्ति।

५—नीचे लिखे पदों के अर्थ लिखो-

नेपथ्ये। सम्यक्। अवरोधनम्। पितामहः।

पञ्चविंशति-तमः पाठः

दूत-वाक्यम् (२)

काञ्चुकीयः—जयतु महा-राजः। एष खलु पाण्डवानां स्कन्धा-वाराद् दौत्येनाऽऽगतः पुरुषो(ष-उ)त्तमो नारायणः।

दुर्योधनः—मा तावद् भो बादरायण! किं किं कंस-भृत्यो दामोदरस् तव पुरुषोत्तमः? स गो-पालकस् तव पुरुषोत्तमः? आः, अपध्वंस।

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु प्रसीदतु महा-राजः। दूतः प्राप्तः केशवः।

दुर्योधनः—केशव इति भोः, सम्यग् उक्तम् इदानीम्। भो भो राजानः! योऽत्र केशवस्य प्रत्यु(ति उ)त्थास्यति, स मया द्वादश-सुवर्ण-भारेण दण्ड्यः। भो बादरायण! आनीयतां स विहग-मात्र-विस्मितो दूतः।

काञ्चुकीयः—यद् आज्ञापयति महा-राजः। (निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण!

प्राप्तः किलाऽद्य वचनाद् इह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्य इव कृष्ण-मतिः स कृष्णः।
श्रोतुं सखे त्वम् अपि सज्जय कर्ण कर्णौ
नारी-मृदूनि वचनानि युधि-ष्ठिरस्य ॥१॥

(ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च)

वासुदेवः—(प्रविश्य, स्व-गतम्) कथं कथं मां दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्व-क्षत्रियाः । (प्रकाशम्) अलम् अलं संभ्रमेण । स्वैरम् आसतां भवन्तः ।

दुर्योधनः—(स्व-गतम्) कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्व-क्षत्रियाः । अलम् अलं संभ्रमेण । स्मरणीयः पूर्वम् आश्रावितो दण्डः । (वासुदेवं प्रति) भो दूत ! एतद् आसनम् आस्यताम् ।

वासुदेवः—आचार्य ! आस्यताम् । गाङ्गेय-प्रमुखा राजानः ! स्वैरम् आसतां भवन्तः । वयम् अप्यु(पि उ)पविशामः ।

(उपविशन्ति सर्वे)

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो–

दौत्येनाऽऽगतः । वचनादिह । आश्रावितो दण्डः ।

३—नीचे लिखे समस्त पदों के विग्रह समझाओ–

सुवर्ण-भारेण । कृष्ण-मतिः । युधि-ष्ठिरस्य ।

४—नीचे लिखे पदों के अर्थ करो–

प्रत्युत्थास्यति । नारी-मृदूनि । गाङ्गेय-प्रमुखाः ।

षड्विंशति-तमः पाठः

दूत-वाक्यम् (३)

दुर्योधनः—भो दूत !

धर्माऽऽत्मजो वायु-सुतश् च भीमो
भ्राताऽर्जुनो मे त्रिदशेन्द्र-सूनुः ।
यमौ च ताव् अश्वि-सुतौ विनीतौ
सर्वे स-भृत्याः कुशलो(ल-उ)पपन्नाः ॥३॥

वासुदेवः—सदृशम् एतद् गान्धारी-पुत्रस्य । कुशलिनः सर्वे । भवतो राज्ये शरीरे च कुशलम् अनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधि-ष्ठिराऽऽदयः पाण्डवाः ।

अनुभूतं महद् दुःखं संपूर्णः समयः स च ।
अस्माकम् अपि धर्म्यं यद् दायाद्यं तद् विभज्यताम् ॥४॥

दुर्योधनः—कथं कथं दायाद्यम् इति । देवाऽऽत्मजास् ते नैवार्हन्ति दायाद्यम् ।

वासुदेवः—राजन् ! मा मैवम् ।

एवं परस्पर-विरोध-विवर्धनेन
शीघ्रं भवेत् कुरु-कुलं नृप ! नाम-शेषम् ।

तत् कर्तुम् अर्हति भवान् अपकृष्य रोषं
　　यत् त्वां युधि-ष्ठिर-मुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥५॥

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणे(ण-इ)तराः ।
संबन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोर् उभयोर् अपि ॥६॥

दुर्योधनः—

देवाऽऽत्मजैर् मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत् ।
पिष्ट-पेषणम् एतावत् पर्याप्तं, छिद्यतां कथा ॥७॥

वासुदेवः—भो दुर्योधन ! न जानीषेऽर्जुनस्य पराक्रमम् ।

शृणु—

कैरातं वपुर् आश्रितः पशु-पतिर् युद्धेन संतोषितो
वह्नेः खाण्डवम् अश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश् छादिता ।
देवेन्द्राऽऽर्ति-करा निवात-कवचा नीताः क्षयं लीलया
नन्वे(नु ए)केन तदा विराट-नगरे भीष्माऽऽदयो निर्जिताः ॥८॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे पदों में समास का नाम बता कर विग्रह करके समझाओ ।

वायु-सुतः । कुरु-कुलम् । स-भृत्याः । देवाऽऽत्मजाः ।
देवेन्द्राऽऽर्ति-कराः ।

३—नीचे लिखे क्रियापदों में धातु, लकार, पुरुष और वचन बताओ—

श‍ृणु। जानीषे। ब्रुवन्ति।

४—नीचे लिखे पदों के सब विभक्तियों और वचनों में रूप बताओ—

भ्रातृ। श्रेयस्। वपुस्।

५—नीचे लिखे पदों के अर्थ बताओ—

अनामयम्। दायाद्यम्। नाम-शेषम्। पिष्ट-पेषणम्। पर्याप्तम्। निवात-कवचाः।

सप्तविंशति-तमः पाठः

दूत-वाक्यम् (४)

किं बहुना ?

दातुम् अर्हसि मद्-वाक्याद् राज्याऽर्धं धृत-राष्ट्र-ज !
अन्यथा सागराऽन्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥९॥

दुर्योधनः—कथं कथं हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ?

प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीम-रूपी
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थ-रूपेण शक्रः ।
परुष-वचन-दक्ष ! त्वद्-वचोभिर् न दास्ये
तृणम् अपि पितृ-भुक्ते वीर्य-गुप्ते स्व-राज्ये ॥१०॥

वासुदेवः—एवम् एवाऽस्तु । न वयम् अनुक्त-संदेशा गन्तुम् इच्छामः । तद् आकर्ण्यतां युधि-ष्ठिरस्य संदेशः—

शठ बान्धव-निःस्नेह काक केकर पिङ्गल !
त्वद्-अर्थात् कुरु-वंशोऽयम् अ-चिराद् नाशम् एष्यति ॥११॥

भो भो राजानः ! गच्छामस् तावत् ।

दुर्योधनः—कथं यास्यति किल केशवः।

दुःशासन! दुर्धर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धे! दुष्टेश्वर! केशवो बध्यताम्।

कथम् अ-शक्ताः? दुःशासन! न समर्थः खल्व (लु अ)-सि? मातुल! त्वयैव बध्यतां केशवः। न कोऽपि शक्तः। भवतु, अहम् एव बध्नामि।

(पाशम् उद्यम्योपसर्पति)

वासुदेवः—कथं कथं बन्धु-कामो मां किल दुर्योधनः? भवतु, अस्य सामर्थ्यं पश्यामि। (विश्व-रूपम् आस्थितः)

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो—

त्वयैव। एवमेवास्तु। खल्वसि। नन्वेकेन। देवात्मजैः।

३—नीचे लिखी क्रियाओं में धातु, लकार, पुरुष और वचन बताओ—

हरिष्यन्ति। दास्ये। एष्यन्ति। पश्यामि। गच्छामः।

४—नीचे लिखे पदों का अर्थ लिखो—

अन्यथा। केकर। मातुल। विश्व-रूपम्।

अष्टाविंशति-तमः पाठः

दूत-वाक्यम् (५)

दुर्योधनः—भो दूत !

सृजसि यदि समन्ताद् देव-मायाः स्व-मायाः

प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुराऽस्त्रैः ।

हय-गज-वृषभाणां पातनाज् जात-दर्पो

नरपति-गण-मध्ये बध्यसे त्वं मयाऽद्य ॥१२॥

आः, तिष्ठे(ष्ठ इ)दानीम् । कथं न दृष्टः केशवः ? अयं केशवः । अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य । आः, तिष्ठेदानीम् । कथं न दृष्टः केशवः ? अयं केशवः । अहो दीर्घत्वं केशवस्य ! कथं न दृष्टः केशवः ? अयं केशवः । (सर्वत्र मन्त्र-शालायां केशवा भ्रमन्ति) । किम् इदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । भो भो राजानः ! एकेनै(न ए)कः केशवो बध्यताम् । कथं कथं स्वयम् एव पाशैर् बद्धाः पतन्ति राजानः, साधु भो जम्भक ! साधु ।

मत्-कार्मुको(क-उ)दर-विनिःसृत-बाण-जालैर्

विद्धं क्षरत्-क्षतज-राजित-सर्व-गात्रम् ।

साहित्य-सुधायां पद्य-भागः

त्रयस्त्रिंशत्-तमः पाठः

सुभाषित-प्रशंसा

भाषासु मुख्या मधुरा, दिव्या गीर्वाण-भारती।
तस्यां हि काव्यं मधुरं, तत्र चाऽपि सुभाषितम् ॥१॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलम् अन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाण-खण्डेषु, रत्न-संज्ञा विधीयते ॥२॥

द्राक्षा म्लान-मुखी जाता, शर्करा चाऽश्मतां गता।
सुभाषित-रसस्याऽग्रे, सुधा भीता दिवं गता ॥३॥

कान् पृच्छामः सुराः स्वर्गे, निवसामो वयं भुवि।
किं वा काव्य-रसः स्वादुः, किं वा स्वादीयसी सुधा ॥४॥

सुभाषितमयैर् द्रव्यैः, संग्रहं न करोति यः।
सोऽयं प्रस्ताव-यज्ञेषु, कां प्रदास्यति दक्षिणाम् ॥५॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों का अर्थ लिखो—

गीर्वाण-भारती। पाषाण-खण्डेषु। सुधा। द्रव्यैः।

३—निम्नलिखित पदों में विग्रह करो—

पाषाण-खण्डः। काव्य-रसः। प्रस्ताव-यज्ञः।

४—नीचे लिखे पदों में धातु, लकार, पुरुष और वचन का निर्देश करोः—

पृच्छामः। करोति। प्रदास्यति।

चतुस्त्रिंशत्-तमः पाठः

प्रहेलिकाः

अस्ति कुक्षिः शिरो नाऽस्ति
बाहुर् अस्ति निर्-अङ्गुलिः ।
अ-पदो नर-भक्षी च
यो जानाति स पण्डितः ॥१॥

अ-पदो दूर-गामी च
साऽक्षरो न च पण्डितः ।
अ-मुखः स्फुट-वक्ता च
यो जानाति स पण्डितः ॥२॥

वृक्षाऽग्र-वासी न च पक्षि-राजस्
त्रि-नेत्र-धारी न च शूल-पाणिः ।
त्वग्-वस्त्र-धारी न च सिद्ध-योगी
जलं च धत्ते न घटो न मेघः ॥३॥

कुलालस्य गृहेऽप्य(पि अ)र्धं
तद्-अर्धं हस्तिनापुरे ।

लङ्कायाम् अपि तद्-युग्मं
यो जानाति स पण्डितः ॥४॥

प्रहेलिकाओं के उत्तर:-

१--वर्म (कवच) युद्ध में सैनिकों के शरीर की रक्षा का एक साधन।

२--पत्र (पोस्टकार्ड)।

३--नारियल।

४--कुम्भ (कुम्भकार के घर), कर्ण (हस्तिनापुर में), कुम्भ-कर्ण (लङ्का में) समझें।

पञ्चत्रिंशत्-तमः पाठः

मुग्धस्य पशु-पालकस्य

पशु-पालो महा-मुग्धः, कोऽप्या(पि आ)सीद् धनवान् वने ।
तस्य धूर्ताः समाश्रित्य, मित्रत्वे बहवोऽमिलन् ॥१॥

ते तं जगदुर्, आढ्यस्य, सुता नगर-वासिनः ।
त्वत्-कृते याचिताऽस्माभिः, सा च पित्रा प्रतिश्रुता ॥२॥

तच् छ्रुत्वा स ददौ तुष्टस्, तेभ्योऽर्थं तं च ते पुनः ।
विवाहस् तव सम्पन्न, इत्यू(ति ऊ)चुर् दिवसैर् गतैः॥३॥

ततः स सुतरां तुष्टस्, तेभ्यो भूरि धनं ददौ ।
दिनैश् च तं वदन्ति स्म, 'पुत्रो जातस् तवेति' ते ॥४॥

ननन्द तेन सर्वं च, मूढस् तेभ्यः समर्प्य सः ।
पुत्रं प्रत्यु(ति उ)त्सुकोऽस्मीति, प्रारोदीच् चाऽपरेऽहनि ॥५॥

रुदंश् चाऽऽदत्त लोकस्य, हासं धूर्तैः स वञ्चितः ।
पशुभ्य इव संक्रान्त-जडिमा पशु-पालकः ॥६॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे दिए पदों में संधि-कार्य समझाओ–

जातस्तवेति। प्रत्युत्सुकोऽस्मीति। इत्यूचुर् दिवसैः। रुदंश्चादत्त।

३—निम्नलिखित पदों में धातु शब्द, विभक्ति पुरुष वचन बतला कर अर्थ बताओ–

अहनि। तेभ्यः। अस्मि। नगर-वासिनः। आसीत्।

४—नीचे लिखे शब्दों के सब विभक्तियों में रूप लिखो–

धन-वत्। पितृ। अहन्।

षट्त्रिंशत्-तमः पाठः

भरत-शपथाः (१)

कैकेयीं भरतं चो(च उ)भाव् अधिक्षिप्य पुनः-पुनः ।
विलुठन्तीम् अधो भूमौ छिन्न-पक्ष-खगीम् इव ॥ १ ॥

पुत्र-पुत्रवधू-भर्तृ-वियुक्तां शोक-विह्वलाम् ।
विलपन्तीम् उवाचे(च इ)दं कौसल्यां भरतस् तदा ॥ २ ॥

भरत उवाच

आर्ये! कस्माद् अ-जानन्तं, गर्हसे माम् अ-कल्मषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिं, स्थिरां जानासि राघवे ॥ ३ ॥

कृता शास्त्राऽनुगा बुद्धिर्, मा भूत् तस्य कदाचन ।
सत्य-सन्धः सतां श्रेष्ठो, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥४॥

बलि-षड्-भागम् उद्धृत्य, नृपस्याऽरक्षितुः प्रजाः ।
अ-धर्मो योऽस्य, सोऽस्याऽस्तु, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः॥५॥

गाश् च स्पृशतु पादेन, गुरून् परिवदेत च ।
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्य(ति-अ)र्थं, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः॥६॥

विश्वासात् कथितं किञ्चित्, परिवादं मिथः क्वचित् ।
विवृणोतु स दुष्टाऽऽत्मा, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥ ७ ॥

पुत्र-दारैश् च भृत्यैश् च, स्व-गृहे परिवारितः ।
स एको मिष्टम् अश्नातु, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥ ८ ॥

राज-स्त्री-बाल-वृद्धानां, वधे यत् पापम् उच्यते ।
भृत्य-त्यागे च यत् पापं, तत् पापं प्रतिपद्यताम् ॥ ९ ॥

संग्रामे समुपोढे च, शत्रु-पक्ष-भयङ्करे ।
पलायमानो वध्येत, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥ १० ॥

माऽस्य धर्मे मनो भूयाद्, अ-धर्मं स निषेवताम् ।
अ-पात्रे पात्रतां पश्येद्, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥ ११ ॥

सञ्चितान्य(नि अ)स्य वित्तानि, विविधानि सहस्रशः ।
दस्युभिर् विप्रलुप्यन्तां, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥ १२ ॥

एवं तं शपथैः कष्टैः, शपमानम् अ-चेतनम् ।
भरतं शोक-संतप्तं, कौसल्या वाक्यम् अब्रवीत् ॥ १३ ॥

कौसल्योवाच

मम दुःखम् इदं पुत्र !, भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि, प्राणान् उपरुणत्सि मे ॥ १४ ॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों में शब्द, विभक्ति और वचन बताओ-

भूमौ। अ-जानन्तम्। अस्य। मम।

३—नीचे लिखे क्रिया-पदों में धातु, पुरुष और वचन बताओ-

गर्हसे। जानासि। द्रुह्येत। अश्नातु।

४—नीचे लिखे पदों का केवल अर्थ करो-

अधिक्षिप्य। अ-कल्मषम्। उद्धृत्य। परिवादम्। शपमानः।

५—नीचे लिखी संख्याओं के पदों का केवल अर्थ बताओ-

५। ७। १०। १३।

सप्तत्रिंशत्-तमः पाठः

भरत-शपथाः (२)

भरत उवाच

तथ्याऽतथ्यम् अ-जानन्त्या, भाषितं यत् त्वयाऽनघे ।
वज्र-तुल्यम् अहो वाक्यं, मेऽन्तर् गडगडायते ॥१॥

शृणु मातर् वदाम्य(मि अ)न्यद्, यत् ते तुष्टि-करं भवेत् ।
श्रुत्वाऽपि चेद् न विश्वासो, भूयात् ते करवाणि किम् ॥२॥

माऽऽत्मनः सन्ततिं द्राक्षीत्, स्वेषु दारेषु दुःखितः ।
आयुः समग्रम् अ-प्राप्य, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥३॥

कपाल-पाणिः पृथिवीम्, अटतां चीर-संवृतः ।
भिक्षमाणो यथो(था उ)न्मत्तो, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥४॥

यद् अग्नि-दायके पापं, यत् पापं गुरु-तल्प-गे ।
बाल-घाते च यत् पापं, तत् पापं प्रतिपद्यताम् ॥५॥

देवताऽतिथि-साधूनां, पित्रा(तृ-आ)दीनां विशेषतः ।
मा स्म कार्षीत् स शुश्रूषां, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥६॥

बहु-पुत्रो दरिद्रश् च, ज्वराऽऽदि-रोग-पीडितः।
यायात् स सततं क्लेशं, यस्याऽऽर्योऽनुमते गतः ॥७॥

पानीय-दूषके पापं, यत् पापं विष-दायके।
पर-स्त्री-धर्षणे यच् च, तत् पापं प्रतिपद्यताम् ॥८॥

एवं बहु-विधैः शापैः, शपमानं मुहुर्-मुहुः।
परिष्वज्याऽङ्कम् आनीय, भरतं भ्रातृ-वत्सलम् ॥९॥

मा रोदीर् वत्स! मद्-वाक्यम्,
श्रृणु यत् ते वदाम्य(मि अ)हम्।
नाऽस्ती(स्ति इ)दानीं त्वयि क्षोभो,
ममेति ह्य(हि अ)वधारय ॥१०॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों का अर्थ करो—
तुष्टिकरम्। गुरुतल्पगे। बालघाते। परस्त्रीधर्षणे।

३—नीचे लिखे पदों में धातु और प्रत्यय बताओ—
भाषितम्। भिद्यमाणः। करवाणि। श्रृणु। यायात्।

४—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो—
त्वयानघे। यस्यार्योनुमते। मद्वाक्यम्। नास्तीदानीम्।

अष्टत्रिंशत्-तमः पाठः

अर्जुन-विषादः

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वे(ष्ट्वा इ)मं स्व-जनं कृष्ण!, युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥१॥
सीदन्ति मम गात्राणि, मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश् च शरीरे मे, रोम-हर्षश् च जायते ॥२॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्, त्वक् चै(च ए)व परिदह्यते ।
न च शक्नोम्य(मि अ)वस्थातुं, भ्रमती(ति इ)व च मे मनः ॥३॥
निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि, हत्वा स्व-जनम् आहवे ॥४॥
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण, न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द, किं भोगैर् जीवितेन वा ॥५॥
येषाम् अर्थे काङ्क्षितं नो, राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणांस् त्यक्त्वा धनानि च ॥६॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्, तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः, श्यालाः संबन्धिनस् तथा ॥७॥

एतान् न हन्तुम् इच्छामि, घ्नतोऽपि मधु-सूदन !
अपि त्रैलोक्य-राज्यस्य, हेतोः, किं नु मही-कृते ॥८॥
निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः, का प्रीतिः स्याज् जनार्दन !
पापम् एवाऽऽश्रयेद् अस्मान्, हत्वैतान् आततायिनः ॥९॥
तस्माद् नाऽर्हा वयं हन्तुं, धार्तराष्ट्रान् स्व-बान्धवान्।
स्व-जनं हि कथं हत्वा, सुखिनः स्याम माधव ॥१०॥
यद्य(दि अ)प्ये(पि ए)ते न पश्यन्ति, लोभोपहत-चेतसः।
कुल-क्षय-कृतं दोषं, मित्र-द्रोहे च पातकम् ॥११॥
कथं न ज्ञेयम् अस्माभिः, पापाद् अस्माद् निवर्तितुम्।
कुल-क्षय-कृतं दोषं, प्रपश्यद्भिर् जनार्दन ॥१२॥
कुल-क्षये प्रणश्यन्ति, कुल-धर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम्, अ-धर्मोऽभिभवत्यु(ति उ)त ॥१३॥
अ-धर्माऽभिभवात् कृष्ण !, प्रदुष्यन्ति कुल-स्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्ण-संकरः ॥१४॥
संकरो नरकायैव, कुल-घ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्ये(हि ए)षां, लुप्त-पिण्डोदक-क्रियाः ॥१५॥
दोषैर् एतैः कुल-घ्नानां, वर्ण-संकर-कारकैः।
उत्साद्यन्ते जाति-धर्माः, कुल-धर्माश् च शाश्वताः ॥१६॥

उत्सन्न - कुल - धर्माणां , मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो , भवतीत्य(ति अ)नुशुश्रुम ॥१७॥

अहो बत महत् पापं, कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद् राज्य-सुख-लोभेन, हन्तुं स्व-जनम् उद्यताः ॥१८॥

यदि माम् अ-प्रतीकारम्, अ-शस्त्रं शस्त्र-पाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्, तन् मे क्षेमतरं भवेत् ॥१९॥

संजय उवाच

एवम् उक्त्वाऽर्जुनः संख्ये, रथो(थ-उ)पस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य स-शरं चापं, शोक-संविग्न-मानसः ॥२०॥

अभ्यास

१--इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२--नीचे लिखे स्थलों में संधि-कार्य दिखाओ-
दृष्ट्वेमम्। भ्रमतीव। त इमेऽवस्थिताः। भवतीत्यनुशुश्रुम।

३--नीचे लिखे पदों में शब्द, विभक्ति और वचन का निर्देश करो-
श्रेयः। येषाम्। पितरः। सम्बन्धिनः। महीकृते। घ्नतः।

४--नीचे लिखे क्रिया-पदों के विषय में परिचय दो-
सीदन्ति। परिदह्यते। आश्रयेत्। प्रणश्यन्ति। जायते।

५--नीचे लिखे शब्दों का केवल अर्थ लिखो-
युयुत्सुम्। स्वजनम्। धार्तराष्ट्रान्। उत्साद्यन्ते।

एकोनचत्वारिंशत्-तमः पाठः

हेमन्त-वर्णनम्

वसतस् तस्य तु सुखं, राघवस्य महाऽऽत्मनः।
शरद्-व्यपाये हेमन्त, ऋतुर् इष्टः प्रवर्तते ॥ १॥

प्रह्वः कलश-हस्तस् तु, सीतया सह वीर्यवान्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता, सौमित्रिर् इदम् अब्रवीत् ॥२॥

अयं स कालः संप्राप्तः, प्रियो यस् ते प्रियं-वद।
अलंकृत इवाऽऽभाति, येन संवत्सरः शुभः ॥ ३ ॥

प्रकृत्या हिम-कोशा(श-आ)ढ्यो, दूर-सूर्यश् च सांप्रतम्।
यथार्थ-नामा सुव्यक्तं, हिमवान् हिमवान् गिरिः॥४॥

मृदु-सूर्याः स-नीहाराः, पटु-शीताः समाहिताः।
शून्याऽरण्या हिम-ध्वस्ता, दिवसा भान्ति सांप्रतम् ॥ ५ ॥

रवि-संक्रान्त-सौभाग्यस्, तुषाराऽरुण-मण्डलः।
निःश्वासाऽन्ध इवाऽऽदर्शश्, चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ ६ ॥

प्रकृत्या शीतल-स्पर्शो, हिम-विद्धश् च सांप्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः, काले द्वि-गुण-शीतलः ॥७॥

मयूखैर् उपसर्पद्भिर् , हिम-नीहार-संवृतैः ।
दूरम् अप्युदितः सूर्यः, शशाऽङ्क इव लक्ष्यते ॥८॥

एते हि समुपासीना, विहगा जल-चारिणः ।
नाऽवगाहन्ति सलिलम् , अ-प्रगल्भा इवाऽऽहवम् ॥९॥

वाष्प-संछन्न-सलिला , रुत-विज्ञेय-सारसाः ।
हिमाऽऽर्द्र-वालुकास् तीरैः, सरितो भान्ति सांप्रतम् ॥१०॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे शब्दों का पद-परिचय बताओ—

विद्धः । संप्राप्तः । समुपासीनाः । वसतः । सुव्यक्तम् ।

३—नीचे लिखे वाक्यों में वाच्य-परिवर्तन करो—

सौमित्रिर् इदम् अब्रवीत् । चन्द्रमा न प्रकाशते ।

४—नीचे लिखे पदों में विग्रह-वाक्य, समासों के नाम और अर्थ बताओ—

यथार्थनामा । शीतलस्पर्शः । कलशहस्तः । हिमविद्धः ।

५—नीचे लिखे पदों का केवल अर्थ बताओ—

प्रह्वः । आढ्यः । समाहिताः । आदर्शः । अप्रगल्भाः । आहवम् । बाष्पम् ।

चत्वारिंशत्-तमः पाठः

कर्म-विपाकः

युधिष्ठिर उवाच

यद्य(दि अ)स्ति दत्तम् इष्टं वा, तपस् तप्तं तथैव च ।
गुरूणां वाऽपि शुश्रूषा, तन् मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

भीष्म उवाच

आत्मनाऽनर्थ-युक्तेन, पापे निविशते मनः ।
स्व-कर्म-कलुषं कृत्वा, कृच्छ्रे लोके विधीयते ॥२॥

दुर्भिक्षाद् एव दुर्भिक्षं, क्लेशात् क्लेशं भयाद् भयम् ।
मृतेभ्यः प्रमृतं यान्ति, दरिद्राः पाप-कारिणः ॥३॥

उत्सवाद् उत्सवं यान्ति, स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम् ।
श्रद्दधानाश् च शान्ताश् च, धनाऽऽढ्याः शुभ-काङ्क्षिणः ॥४॥

व्याल-कुञ्जर-दुर्गेषु, सर्प-चोर-भयेषु च ।
हस्ताऽऽवापेन गच्छन्ति, नास्तिकाः किम् अतः परम् ॥५॥

प्रिय-देवाऽऽतिथेयाश् च, वदान्याः प्रिय-साधवः ।
क्षेम्यम् आत्म-वतां मार्गम्, आस्थिता हस्त-दक्षिणम् ॥६॥

पुलाका इव धान्येषु, पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तद्-विधास् ते मनुष्याणां, येषां धर्मो न कारणम् ॥७॥

सु-शीघ्रम् अपि धावन्तं, विधानम् अनुधावति ।
शेते सह शयानेन, येन येन यथा कृतम् ॥८॥

उपतिष्ठति तिष्ठन्तं, गच्छन्तम् अनुगच्छति ।
करोति कुर्वतः कर्म, च्छायेवाऽनुविधीयते ॥९॥

येन येन यथा यद् यत्, पुरा कर्म समीहितम् ।
तत् तद् एकतरो भुङ्क्ते, नित्यं विहितम् आत्मना ॥१०॥

स्व-कर्म-फल-निक्षेपं, विधान-परिरक्षितम् ।
भूत-ग्रामम् इमं कालः, समन्तात् परिकर्षति ॥११॥

अ-चोद्यमानानि यथा, पुष्पाणि च फलानि च ।
स्व-कालं नाऽतिवर्तन्ते, तथा कर्म पुरा-कृतम् ॥१२॥

संमानश् चाऽवमानश् च, लाभाऽलाभौ क्षयो(य-उ)दयौ ।
प्रवृत्तानि निवर्तन्ते, विधानाऽन्ते पुनः-पुनः ॥१३॥

आत्मना विहितं दुःखम्, आत्मना विहितं सुखम् ।
गर्भ-शय्याम् उपादाय, भुज्यते पौर्वदेहिकम् ॥१४॥

बालो युवा च वृद्धश् च, यत् करोति शुभाऽशुभम् ।
तस्यां तस्याम् अवस्थायां, तत् फलं प्रतिपद्यते ॥१५॥

यथा धेनु-सहस्रेषु, वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्व-कृतं कर्म, कर्तारम् अनुगच्छति ॥१६॥
समुन्नम् अग्रतो वस्त्रं, पश्चाच् छुध्यति कर्मणा ।
उपवासैः प्रतप्तानां, दीर्घं सुखम् अनन्तकम् ॥१७॥
दीर्घ-कालेन तपसा, सेवितेन तपो-वने ।
धर्म-निर्धूत-पापानां, संपद्यन्ते मनो-रथाः ॥१८॥
शकुनानाम् इवाऽऽकाशे, मत्स्यानाम् इव चो(च उ)दके ।
पदं यथा न दृश्येत, तथा ज्ञान-विदां गतिः ॥१९॥
अलम् अन्यैर् उपालम्भैः, कीर्तितैश् च व्यतिक्रमैः ।
पेशलं चाऽनुरूपं च, कर्तव्यं हितम् आत्मनः ॥२०॥

अभ्यास

१ – इस पाठ के सार को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ लिखो—

शुश्रूषा । निविशते । स्व-कर्म-कलुषम् । कृच्छ्रे । धनाढ्याः । व्याल-कुञ्जर-दुर्गेषु । हस्तावापेन । वदान्या । हस्त-दक्षिणम् । पुलाकाः । पुत्तिकाः । शशानेन । समीहितम् । अचोद्यमानानि । स्व-कर्म-फल-निक्षेपम् । गर्भ-शय्याम् । क्षयोदयौ । धर्म-निर्धूत-पापानाम् । उपालम्भैः । पेशलम् ।

एकचत्वारिंशत्-तमः पाठः

अराजकता-हानयः

अ-संशयं विना राज्ञा, विनश्येयुर् इमाः प्रजाः ।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्, अ-गोपाः पशवो यथा ॥ १ ॥

हरेयुर् बलवन्तोऽपि, दुर्बलानां परिग्रहान् ।
हन्युर् व्यायच्छमानांश् च, यदि राजा न पालयेत् ॥ २ ॥

ममेदम् इति लोकेऽस्मिन्, न भवेत् संपरिग्रहः ।
न दारा न च पुत्रः स्याद्, न धनं न परिग्रहः ॥ ३ ॥

धर्माऽधर्मस्य मर्यादा, विनश्येद् आशु लोकतः ।
विष्वग् लोपः प्रवर्तेत, यदि राजा न पालयेत् ॥ ४ ॥

पतेद् बहु-विधं शस्त्रं, बहुधा धर्म-चारिषु ।
अ-धर्मः प्रगृहीतः स्याद्, यदि राजा न पालयेत् ॥ ५ ॥

मातरं पितरं वृद्धम् , आचार्यम् अतिथिं गुरुम् ।
क्लिश्नीयुर् अपि हिंस्युर् वा, यदि राजा न पालयेत् ॥ ६ ॥

वध-बन्ध-परिक्लेशो , नित्यम् अर्थवतां भवेत् ।
ममत्वं च न विन्देयुर्, यदि राजा न पालयेत् ॥ ७ ॥

अन्ताश् चाऽकाल एव स्युर्, लोकोऽयं दस्युसाद् भवेत्।
पतेयुर् नरकं घोरं, यदि राजा न पालयेत्॥ ८ ॥

न योनि-दोषो वर्तेत, न कृषिर् न वणिक्-पथः।
मज्जेद् धर्मस् त्रयी न स्याद्, यदि राजा न पालयेत्॥ ९ ॥

न यज्ञाः संप्रवर्तेयुर्, विधि-वत् स्वा(सु आ)प्त-दक्षिणाः।
न विवाहाः समाजो वा, यदि राजा न पालयेत्॥१०॥

न वृषाः संप्रवर्तेरन्, न मथ्येरंश् च गर्गराः।
घोषाः प्रणाशं गच्छेयुर्, यदि राजा न पालयेत्॥११॥

न संवत्सर-सत्राणि, तिष्ठेयुर् अ-कुतो-भयाः।
विधिवद् दक्षिणावन्ति, यदि राजा न पालयेत्॥१२॥

ब्राह्मणाश् चतुरो वेदान्, नाऽधीयीरंस् तपस्विनः।
विद्या-स्नाता व्रत-स्नाता, यदि राजा न पालयेत्॥१३॥

न लभेद् धर्म-संश्लेषं, हत-विप्रहतो जनः।
हर्ता स्वस्थे(स्थ-इ)न्द्रियो गच्छेद्, यदि राजा न पालयेत्॥१४॥

हस्ताद् ध(ह)स्तं परिमुषेद्, भिद्येरन् सर्व-सेतवः।
भयाऽऽर्तं विद्रवेत् सर्वं, यदि राजा न पालयेत्॥१५॥

अ-नयाः संप्रवर्तेरन्, भवेद् वै वर्ण-संकरः।
दुर्भिक्षम् आविशेद् राष्ट्रं, यदि राजा न पालयेत्॥१६॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों का अर्थ करो–

परिग्रहान् । दाराः । विष्वक् । प्रगृहीतः । क्लिश्नीयुः । हिंस्युः ।
वध-बन्ध-परिक्लेशः । दस्युसात् । योनिदोषः । मज्जेत् ।
त्रयी । स्वाप्त-दक्षिणाः । वृषाः । गर्गराः । अधीयीरन् ।
धर्म-संश्लेषम् । परिमुषेत् । भिद्येरन् । वर्णसंकरः ।

३—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो–

पशवो यथा । लोकोऽयम् । ब्राह्मणाश्चतुरो वेदान् ।

द्विचत्वारिंशत्-तमः पाठः

प्रह्लाद-चरितम् (१)

मैत्रेय ! श्रूयतां सम्यक्, चरितं तस्य धीमतः ।
प्रह्लादस्य सदो(दा उ)दार-, चरितस्य महाऽऽत्मनः ॥१॥

दितेः पुत्रो महा-वीर्यो, हिरण्य-कशिपुः पुरा ।
त्रैलोक्यं वशम् आनिन्ये, ब्रह्मणो वर-दर्पितः ॥२॥

पानाऽऽसक्तं महाऽऽत्मानं, हिरण्य-कशिपुं तदा ।
उपासांचक्रिरे सर्वे, सिद्ध-गन्धर्व-पन्नगाः ॥३॥

तस्य पुत्रो महा-भागः, प्रह्लादो नाम विश्रुतः ।
पपाठ बाल-पाठ्यानि, गुरु-गेहे गतोऽर्भकः ॥४॥

एकदा तु स धर्माऽऽत्मा, जगाम गुरुणा सह ।
पानाऽऽसक्तस्य पुरतः, पितुर् दैत्य-पतेस् तदा ॥५॥

पाद-प्रणामाऽवनतं , तम् उत्थाप्य पिता सुतम् ।
हिरण्य-कशिपुः प्राह, प्रह्लादम् अमितौ(त-ओ)जसम् ॥६॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

पठ्यतां भवता वत्स, सार-भूतं सुभाषितम् ।
कालेनै(न ए)तावता यत् ते, सदो(दा उ)द्युक्तेन शिक्षितम् ॥७॥

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां तात वक्ष्यामि, सार-भूतं तवाऽऽज्ञया ।
समाहित-मना भूत्वा, यद् मे चेतस्य् अवस्थितम् ॥८॥

अनादि-मध्याऽन्तम् अ-जम्, अवृद्धि-क्षयम् अ-च्युतम् ।
प्रणतोऽस्मि महाऽऽत्मानं, सर्व-कारण-कारणम् ॥९॥

पराशर उवाच

एवं निशम्य दैत्ये(त्य-इ)न्द्रः, क्रोध-संरक्त-लोचनः ।
विलोक्य तद्-गुरुं प्राह, स्फुरिताऽधर-पल्लवः ॥१०॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

ब्रह्म-बन्धो ! किम् एतत् ते, विपक्ष-स्तुति-संहितम् ।
अ-सारं ग्राहितो बालो, माम् अवज्ञाय दुर्मते ! ॥११॥

गुरुर् उवाच

दैत्ये(त्य-ई)श्वर ! न कोपस्य, वशम् आगन्तुम् अर्हसि ।
ममो(म उ)पदेश-जनितं, नाऽयं वदति ते सुतः ॥१२॥

अभ्यास

१—नीचे लिखे पदों में शब्द, विभक्ति और वचन का निर्णय करो-

समाहितमनाः। चेतसि। महात्मानम्। ते। एतावता। पितुः। ब्राह्मणः।

२—नीचे दिए धातु-रूपों के तुमुन्नन्त तथा क्तान्त रूप बनाओः-

जनितम्। प्रणतः। अवज्ञाय। अवस्थितम्। विलोक्य।

३—नीचे लिखे पदों का अर्थ स्पष्टतया लिखो-

समाहित-मनाः। क्रोध-संरक्त-लोचनः। ब्रह्म-बन्धुः। विपत्ति-स्तुति संहितम्।

त्रिचत्वारिंशत्-तमः पाठः

प्रह्लाद-चरितम् (२)

हिरण्यकशिपुर् उवाच

अनुशिष्टोऽसि केने(न ई)दृग्, वत्स! प्रह्लाद कथ्यताम्।
ममो(म उ)पदिष्टं नेत्ये(ति ए)ष, प्रब्रवीति गुरुस् तव ॥१३॥

प्रह्लाद उवाच

शास्ता विष्णुर् अ-शेषस्य, जगतो यो हृदि स्थितः।
तम् ऋते परमात्मानं, तात! कः केन शिष्यते ॥१४॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

कोऽयं विष्णुः सुदुर्बुद्धे, यं ब्रवीषि पुनः-पुनः।
जगताम् ईश्वरस्ये(स्य इ)ह, पुरतः प्रसभं मम ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच

न शब्द-गोचरो यस्य, योगि-ध्येयं परं पदम्।
यतो यश् च स्वयं विश्वं, स विष्णुः परमेश्वरः ॥१६॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

परमेश्वर-संज्ञोऽज्ञ!, किम् अन्यो मय्य(यि अ)वस्थिते।
तथाऽपि मर्तुकामस् त्वं, प्रब्रवीषि पुनः-पुनः ॥१७॥

प्रह्लाद उवाच

न केवलं तात ! मम प्रजानां,
स ब्रह्म-भूतो भवतश् च विष्णुः ।
धाता विधाता परमेश्वरश् च
प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ॥१८॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

निष्कास्यताम् अयं दुष्टः, शास्यतां च गुरोर् गृहे ।
योजितो दुर्मतिः केन, विपक्ष-विषय-स्तुतौ ॥१९॥

पराशर उवाच

कालेऽतीते च महति, प्रह्लादम् असुरेश्वरः ।
समाहूयाऽब्रवीत् पुत्र ! गाथा काचित् प्रगीयताम् ॥२०॥

प्रह्लाद उवाच

यतः प्रधान-पुरुषौ, यतश् चै(च ए)तच् चराऽचरम् ।
कारणं सकलस्याऽस्य, स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥२१॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

दुर्बुद्धे ! विनिवर्तस्व, वैरि-पक्ष-स्तवाद् अतः ।
अ-भयं ते प्रयच्छामि, माऽतिमूढ-मतिर् भव ॥२२॥

प्रह्लाद उवाच

भयं भयानाम् अपहारिणि स्थिते,
मनस्य(सि अ)नन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।
यस्मिन् स्मृते जन्म-जराऽन्तकाऽऽदि-
भयानि सर्वाण्य(णि अ)पयान्ति तात! ॥२३॥

अभ्यास

१—नीचे लिखे पदों में संधिच्छेद करो—

नेत्येषः । कोऽयम् । केनेदृक् । मय्यवस्थिते । सर्वाण्यपयान्ति ।

२—नीचे लिखे पदों में विग्रह-वाक्य लिख कर उन समासों के नाम भी लिखो—

परमेश्वरः । वैरि-पक्ष-स्तवात् । असुरेश्वरः । प्रधान-पुरुषौ ।

३—वृत् धातु के साथ अनु, प्रति, अभि, वि और उप इन उपसर्गों को जोड़ कर वर्तमानकाल तथा भूतकाल के क्रियापदों में वाक्य बनाओ—

४—नीचे लिखे पदों का अर्थ बताओ—

तम् ऋते । मर्तु-कामः । प्रसभम् । विपक्ष-विषय-स्तुतौ ।

चतुश्चत्वारिंशत्-तमः पाठः

प्रह्लाद-चरितम् (३)

हिरण्यकशिपुर् उवाच

भो भोः सर्पा ! दुराचारम्, एनम् अत्यन्त-दुर्मतिम् ।
विष-ज्वालाऽऽकुलैर् वक्त्रैः, सद्यो नयत संक्षयम् ॥२४॥

पराशर उवाच

इत्यु(ति उ)क्तास् तेन ते सर्पाः, कुहकास् तक्षकाऽन्धकाः ।
अदशंस् तं समस्तेषु, गात्रेष्व(षु अ)तिविषोल्बणाः ॥२५॥

स त्वा(तु आ)सक्त-मतिः कृष्णे, दश्यमानो महो(हा-उ)रगैः ।
न विवेदाऽऽत्मनो गात्रं, तत्-स्मृत्या(ति-आ)ह्लाद-संस्थितः॥२६

सर्पा ऊचुः

दंष्ट्रा विशीर्णा मणयः स्फुटन्ति,
फणेषु तापो हृदयेषु कम्पः ।
नाऽस्य त्वचः स्वल्पम् अपीह भिन्नं,
प्रशाधि दैत्येश्वर ! कार्यम् अन्यत् ॥२७॥

हिरण्यकशिपुर् उवाच

ज्वाल्यताम् असुरा ! वह्निर्, अपसर्पत दिग्-गजाः ! ।
वायो ! समेधयाऽग्निं त्वं, दह्यताम् एष पाप-कृत् ॥२८॥

पराशर उवाच

महा-काष्ठ-चय-च्छन्नम्, असुरेन्द्र-सुतं ततः ।
प्रज्वाल्य दानवा वह्निं, ददहुः स्वामि-नोदिताः ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच

तातै(त ! ए)ष वह्निः पवने(न इ)रितोऽपि,
न मां दहत्य(ति अ)त्र समन्ततोऽहम् ।
पश्यामि पद्मास्तरणाऽऽस्तृतानि,
शीतानि सर्वाणि दिशां मुखानि ॥३०॥

पराशर उवाच

अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्, भार्गवस्याऽऽत्मजा द्विजाः ।
पुरोहिता महाऽऽत्मानः, साम्ना संस्तूय वाग्मिनः ॥३१॥

पुरोहिता ऊचुः

राजन् ! नियम्यतां कोपो, बालेऽत्र तनये निजे ।
कोपो देव-निकायेषु, यत्र ते स-फलो यतः ॥३२॥

तथा तथैनं बालं ते, शासितारो वयं नृप !
यथा विपक्ष-नाशाय, विनीतस् ते भविष्यति ॥३३॥

बालत्वं सर्व-दोषाणां, दैत्य-राजाऽऽस्पदं यतः ।
ततोऽत्र कोपम् अत्यर्थं, योक्तुम् अर्हसि नाऽर्भके ॥३४॥

पराशर उवाच

एवम् अभ्यर्थितस् तैस् तु, दैत्य-राजः पुरोहितैः ।
दैत्यैर् निष्कासयामास, पुत्रं पावक-संचयात् ॥३५॥
ततो गुरु-गृहे बालः, स वसन् बाल-दानवान् ।
अध्यापयामास मुहुर्, उपदेशाऽन्तरे गुरोः ॥३६॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो ।

२—नीचे लिखे पदों में शब्द, विभक्ति और वचनों का विवेचन करोः-

त्वचः । गात्रम् । वसन् । तनये । अहम् । दिशाम् । साम्ना । शासितारः ।

३—नीचे लिखे पदों में विग्रह-वाक्य तथा समासों के नाम लिखोः-

गुरुगृहे । दैत्यराजः । विषज्वालाकुलैः । विपत्तनाशाय । सर्वदोषाणाम् ।

४—नीचे लिखे धातुओं के लोट्, लङ्, विधिलिङ् लकारों में कैसे रूप बनेंगे ?

प्रशाधि । समेधय ।

५—नीचे लिखे शब्दों का केवल अर्थ लिखो—

वक्त्रम् । उरगैः । नोदिताः । अर्भके । वाग्मिनः ।

पञ्चचत्वारिंशत्-तमः पाठः

वर्षा-वर्णनम् (१)

स तदा बालिनं हत्वा, सुग्रीवम् अभिषिच्य च ।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे, रामो लक्ष्मणम् अब्रवीत् ॥१॥
अयं स कालः संप्राप्तः, समयोऽद्य जलाऽऽगमः ।
संपश्य त्वं नभो मेघैः, संवृतं गिरि-संनिभैः ॥२॥
मेघोदर-विनिर्मुक्ताः, कर्पूर-दल-शीतलाः ।
शक्यम् अञ्जलिभिः पातुं, वाताः केतक-गन्धिनः ॥३॥
एष फुल्लाऽर्जुनः शैलः, केतकैर् अभिवासितः ।
सुग्रीव इव शान्ताऽरिर्, धाराभिर् अभिषिच्यते ॥४॥
मेघ-कृष्णाऽजिन-धरा, धारा-यज्ञोपवीतिनः ।
मारुताऽऽपूरित-गुहाः, प्राधीता इव पर्वताः ॥५॥
कशाभिर् इव हैमीभिर्, विद्युद्भिर् अभिताडितम् ।
अन्तः-स्तनित-निर्घोषं, स-वेदनम् इवाऽम्बरम् ॥६॥

अभ्यास

१--इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—निम्नलिखित पदों में शब्द, विभक्ति और वचन लिखो-

एषः। वसन्। नभः। शैलः। कशाभिः।

३--निम्नलिखित पदों को संस्कृत-वाक्यों में प्रयोग करो-

हत्वा। पातुम्। शान्तः। संवृतम्। अभिषिच्य।

४--नीचे लिखे पदों में समास, विग्रह-वाक्य तथा उनके नाम लिखो-

मारुतापूरितगुहाः। कर्पूरदलशीतलाः। शान्तारिः। जलागमः।

५—नीचे लिखे पदों का अर्थ लिखो-

अजिनम्। प्राधीताः। सन्वेदनम्।

षट्-चत्वारिंशत्-तमः पाठः

वर्षा-वर्णनम् (२)

रजः प्रशान्तं स-हिमोऽद्य वायुर्,
निदाघ-दोष-प्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाऽधिपानां,
प्रवासिनो यान्ति नराः स्व-देशान् ॥७॥

क्वचित् प्रकाशं क्वचिद् अ-प्रकाशं,
नभः प्रकीर्णाऽम्बुधरं विभाति ।
क्वचित्-क्वचित् पर्वत-संनिरुद्धं,
रूपं यथा शान्त-महाऽर्णवस्य ॥८॥

रसाऽऽकुलं षट्पद-संनिकाशं,
प्रभुज्यते जम्बु-फलं प्रकामम् ।
अनेक-वर्णं पवनाऽवधूतं,
भूमौ पतत्या(ति आ)म्र-फलं विपक्वम् ॥९॥

समुद्वहन्तः सलिलाऽतिभारं,
वलाकिनो वारि-धरा नदन्तः ।

महत्सु शृङ्गेषु मही-धराणां,
विश्रम्य-विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥१०॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति,
गायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्त-गजा वनान्ता,
रसाऽनुरक्ताः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥११॥

तडित्-पताकाभिर् अलङ्कृतानाम्,
उदीर्ण-गम्भीर-महा-रवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां,
रणोत्सुकानाम् इव वानराणाम् ॥१२॥

मुक्ताऽवभासं सलिलं पतद् वै,
सुनिर्मलं पत्र-पुटेषु लग्नम् ।
दृष्ट्वा विवर्ण-च्छदना विहङ्गाः,
सुरेन्द्र-दत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥१३॥

मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्राः,
वनेषु विक्रान्त-तरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः,
प्रक्रीडितो वारि-धरैः सुरेन्द्रः ॥१४॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे क्रिया-पदों के धातु, लकार, पुरुष और वचन बता कर लङ् लकार के रूप बताओ-

नृत्यन्ति। पिबन्ति। समाश्वसन्ति। गायन्ति।

३—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन लिखो-

रजः। नभः। फलम्। भूमौ। नद्यः।

४—नीचे लिखे पदों के धातु और उपसर्ग को पृथक् २ बता कर उपसर्ग के लगने से धातु के अर्थ की विशेषता दिखाओ-

संनिरुध्य। विपक्कम्। प्रशान्तम्।

५—नीचे लिखे पदों का अर्थ बताओ-

प्रकीर्णम्। प्रकामम्। निभृताः। लवङ्गाः। शिखिनः।

सप्तचत्वारिंशत्-तमः पाठः

युधिष्ठिर-निर्वेदः (१)

विजिते(ता इ)यं मही कृत्स्ना, कृष्ण-बाहु-बलाऽऽश्रयात् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन, भीमाऽर्जुन-बलेन च ॥१॥
इदं मम महद् दुःखं, वर्तते हृदि नित्यशः ।
कृत्वा प्रतिक्षयं चे(च इ)मं, महान्तं लोभ-कारितम् ॥२॥
सौभद्रं द्रौपदेयांश् च, घातयित्वा सुतान् प्रियान् ।
जयोऽयम् अ-जयाऽऽकारो, भगवन्! प्रतिभाति मे ॥३॥
किं नु वक्ष्यति वार्ष्णेयी, वधूर् मे मधु-सूदनम् ।
द्वारका-वासिनं कृष्णम्, इतः प्रतिगतं हरिम् ॥४॥
द्रौपदी हत-पुत्रे(त्रा इ)यं, कृपणा हत-बान्धवा ।
अस्मत्-प्रिय-हिते युक्ता, भूयः पीडयतीव माम् ॥५॥
इदम् अन्यत् तु भगवन्, यत् त्वां वक्ष्यामि नारद!
मन्त्र-संवरणेनाऽस्मि, कुन्त्या दुःखेन योजितः ॥६॥
यः स नागाऽयुत-बलो, लोकेऽप्रतिरथो रणे ।
सिंह-खेल-गतिर् धीमान्, घृणी दाता यत-व्रतः ॥७॥

आश्रयो धार्तराष्ट्राणां, मानी तीक्ष्ण-पराक्रमः ।
अ-मर्षी नित्य-संरम्भी, क्षेप्ताऽस्माकं रणे-रणे ॥ ८ ॥

शीघ्राऽस्त्रश् चित्र-योधी च, कृती चाऽद्भुत-विक्रमः ।
गूढोत्पन्नः सुतः कुन्त्या, भ्राताऽस्माकम् असौ किल ॥ ९ ॥

अ-जानता मया भ्रात्रा, राज्य-लुब्धेन घातितः ।
तन् मे दहति गात्राणि, तूल-राशिम् इवाऽनलः ॥१०॥

अभ्यास

१—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो—

विजितेयम् । जयोयम् । हत-पुत्रेयम् । पीडयतीव । मन्त्र-संवरणेनाऽस्मि । लोकेप्रतिरथो रणे । शीघ्रास्त्रश्चित्र-योधी ।

२—नीचे लिखे वाक्यों में विग्रह बता कर समासों के नाम भी बताओ—

कृष्णबाहुबलाश्रयात् । भीमार्जुनबलेन । द्वारकावासिनम् । हतबान्धवा । तीक्ष्णपराक्रमः ।

३—नीचे लिखे पदों के विभक्ति और वचन लिखो—

ब्राह्मणानाम् । हृदि । घृणी । क्षेप्ता । अस्माकम् ।

४—नीचे लिखे क्रियापदों में धातु, काल, पुरुष और वचन समझाओ—

वर्तते । पीडयति । अस्मि । वक्ष्यति ।

५—नीचे लिखे वाक्यों का अर्थ लिखो—

लोभ-कारितम् । घातयित्वा । वार्ष्णेयी । मन्त्र-संवरणेन । अ-प्रतिरथः । अ-मर्षी । चित्र-योधी ।

अष्टचत्वारिंशत्-तमः पाठः

युधिष्ठिर-निर्वेदः (२)

आविष्टो दुःख-शोकाभ्यां, निःश्वसंश् च पुनः-पुनः।
दृष्ट्वाऽर्जुनम् उवाचे(च इ)दं, वचनं शोक-कर्शितः ॥११॥

यद् भैक्ष्यम् आचरिष्याम, वृष्ण्य(ष्णि अ)न्धक-पुरे वयम्।
ज्ञातीन् निष्पुरुषान् कृत्वा, नेमां प्राप्स्याम दुर्गतिम् ॥१२॥

अ-मित्रा नः समृद्धाऽर्था, वृत्ताऽर्थाः कुरवः किल।
आत्मानम् आत्मना हत्वा, किं धर्म-फलम् आप्नुमः ॥१३॥

धिग् अस्तु क्षात्रम् आचारं, धिग अस्तु बल-पौरुषम्।
धिग् अस्त्व(स्तु अ)मर्षं येनेमाम्, आपदं गमिता वयम् ॥१४॥

त्रैलोक्यस्याऽपि राज्येन, नाऽस्मान् कश्चित् प्रहर्षयेत्।
बान्धवान् निहतान् दृष्ट्वा, पृथिव्यां विजयै(य ए)षिणः ॥१५॥

न पृथिव्या सकलया, न सुवर्णस्य राशिभिः।
न गवाऽश्वेन सर्वेण, ते त्याज्या य इमे हताः ॥१६॥

बहु-कल्याण-संयुक्तान्, इच्छन्ति पितरः सुतान्।
तपसा ब्रह्मचर्येण, सत्येन च तितिक्षया ॥१७॥

उपवासैस् तथे(था इ)ज्याभिर्, व्रत-कौतुक-मङ्गलैः।
लभन्ते मातरो गर्भान्, मासान् दश च बिभ्रति ॥१८॥

यदि स्वस्ति प्रजायन्ते, जाता जीवन्ति वा यदि ।
संभाविता जात-बलास्, ते दद्युर् यदि नः सुखम् ॥१९॥

तदा तु स-फलं जन्म, मन्यन्ते गृह-मेधिनः ।
इह चाऽमुत्र चै(च ए)वेति, कृपणाः फल-हेतवः ॥२०॥

तासाम् अयं समुद्योगो, निर्वृत्तः केवलोऽफलः ।
यद् आसां नि-हताः पुत्रा, युवानो मृष्ट-कुण्डलाः ॥२१॥

अ-भुक्त्वा पार्थिवान् भोगान्, ऋणान्य(नि अ)नपहाय च ।
पितृभ्यो देवताभ्यश् च, गता वैवस्वत-क्षयम् ॥२२॥

अभ्यास

१—नीचे लिखे पदों में संधि-छेद करो–

निःश्वसंश्च । दृष्ट्वार्जुनम् । यद् भैक्ष्यम् । धिगस्तु । गवाश्वेन । ऋणान्यनपहाय ।

२—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन पृथक् करो–

आत्मना । निहतान् । पितरः । तितिक्षया । पृथिव्याम् । तासाम् ।

३—नीचे लिखे शब्दों का भावार्थ लिखो–

शोक-कर्शितः । भैक्ष्यम् । निष्पुरुषान् । अ-मर्षम् । प्रहर्षयेत् । संभाविताः । मृष्ट-कुण्डलाः ।

४—नीचे लिखी संख्या के पद्यों का सारांश लिखो–

१२ । १५ । १८ । १६ । २२ ।

एकोनपञ्चाशत्-तमः पाठः

युधिष्ठिर-निर्वेदः (३)

वयम् एवाऽस्य लोकस्य, विनाशे कारणं स्मृताः ।
धृत-राष्ट्रस्य पुत्रेषु, तत् सर्वं प्रतिपत्स्यते ॥२३॥

न स-कामा वयं ते च, न चाऽस्माभिर् न तैर् जितम् ।
न तैर् भुक्तेयम् अवनिर्, न नार्यो गीत-वादितम् ॥२४॥

नाऽमात्य-सुहृदां वाक्यं, न च श्रुतवतां श्रुतम् ।
न रत्नानि परार्ध्यानि, न भूर् न द्रविणाऽऽगमः ॥२५॥

आत्मनो हि वयं दोषाद्, विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।
प्रदहन्तो दिशः सर्वा, भास्वरा इव तेजसा ॥२६॥

अ-वध्यानां वधं कृत्वा, लोके प्राप्ताः स्म वाच्यताम् ।
कुलस्याऽस्याऽन्त-करणं, दुर्मतिं पाप-पूरुषम् ॥२७॥

राजा राष्ट्रेश्वरं कृत्वा, धृतराष्ट्रोऽद्य शोचति ।
हताः शूराः कृतं पापं, विषयः स्वो विनाशितः ॥२८॥

ख्यापनेनाऽनुतापेन , दानेन तपसाऽपि वा ।
नि-वृत्त्या तीर्थ-गमनाच्, छ्रुति-स्मृति-जपेन वा ॥२९॥

त्यागवांश् च पुनः पापं, नाऽलं कर्तुम् इति श्रुतिः ।
एवं निष्कल्मषो भूत्वा, स्थित-प्रज्ञ इव स्थितः ॥३०॥
स धनञ्जय ! निर्द्वन्द्वो, मुनिर् ज्ञान-समन्वितः ।
वनम् आमन्त्र्य वः सर्वान्, गमिष्यामि परंतप ! ॥३१॥
नहि कृत्स्नतमो धर्मः, शक्यः प्राप्तुम् इति श्रुतिः ।
परिग्रहवता तन् मे, प्रत्यक्षम् अरि-सूदन ! ॥३२॥
गमिष्यामि विनिर्मुक्तो, विशोको निर्ममः क्वचित् ।
प्रशाधि त्वम् इमाम् उर्वीं, क्षेमां निहत-कण्टकाम् ॥३३॥
न ममाऽर्थोऽस्ति राज्येन, भोगैर् वा कुरु-नन्दन !
यदा तदा न चेहाऽस्ति, जीवितेनाऽधुना भुवि ॥३४॥

अभ्यास

१—इस पाठ को अपने शब्दों में बहुत संक्षिप्त करके लिखो।

२—नीचे लिखे पदों के शब्द, विभक्ति और वचन का निश्चय करो—

सुहृदाम् । रत्नानि । सर्वान् । दिशः । शाश्वतीः ।

३—नीचे लिखे पदों का केवल अर्थ बताओ—

प्रतिपत्स्यते । गीत-वादितम् । परार्ध्यानि । द्रविणाऽऽगमः । वाच्यताम् । निष्कल्मषः । निर्द्वन्द्वः । निहत-कण्टकाम् । ईहा ।

पञ्चाशत्-तमः पाठः

लोकोक्तयः

१. संहतिः कार्य-साधिका ।

२. न साहसम् अनारुह्य, नरो भद्राणि पश्यति ।

३. सहसा विदधीत न क्रियाम् ।

४. भिन्न-रुचिर् हि लोकः ।

५. गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि, भवत्येव प्रमादतः ।

६. किम् इष्टम् अन्नं खर-सूकराणाम् ।

७. शठे शाठ्यं समाचरेत् ।

८. न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः । (ऋक्)

९. अनुक्तम् अप्यू(पि ऊ)हति पण्डितो जनः ।

१०. अपि धन्वन्तरिर् वैद्यः, किं करोति गताऽऽयुषि ।

११. मृगा मृगैः सङ्गम् अनुव्रजन्ति ।

१२. धीरास् तरन्त्या(न्ति आ)पदम् ।

१३. नहि कस्तूरिकाऽऽमोदः, शपथेन विभाव्यते ।

१४. मौनं स्वीकार-लक्षणम् ।

१५. दारिद्र्य-दोषो गुण-राशि-नाशी ।

१६. दूरतः पर्वता रम्याः ।

१७. चक्रवत् परिवर्तन्ते, दुःखानि च सुखानि च ।

१८. पतनाऽन्ताः समुच्छ्रयाः ।

१९. अतिदर्पे हता लङ्का ।

२०. अतिपरिचयाद् अवज्ञा भवति ।

२१. अविवेकः परम् आपदां पदम् ।

२२. मौनं सर्वाऽर्थ-साधकम् ।

२३. निरस्त-पादपे देशे, एरण्डोऽपि द्रुमायते ।

२४. न बिडालो भवेद् यत्र, तत्र क्रीडन्ति मूषकाः ।

२५. उत्पतितोऽपि हि चणकः, शक्तः किं भ्राष्ट्रकं भङ्क्तुम्।

२६. न कूप-खननं युक्तं, प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।

२७. सर्वः स्वाऽर्थं समीहते ।

२८. पयोऽपि शौण्डिकी-हस्ते, वारुणीत्य(ति अ)भिधीयते।

२९. सर्व-नाशे समुत्पन्ने, अर्धं त्यजति पण्डितः ।

३०. प्रासाद-शिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते ।

३१. अगच्छन् वैनतेयोऽपि, पदम् एकं न गच्छति ।

३२. क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने, ममत्वम् उच्चैःशिरसाम् अतीव ।

३३. शरीरम् आद्यं खलु धर्म-साधनम् ।

३४. शुष्केणाऽऽर्द्रं दह्यते मिश्र-भावात् ।

३५. इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर् गुणैः ।

३६. मतिर् एव बलाद् गरीयसी ।

३७. अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।

३८. खलः करोति दुर्वृत्तं, नूनं फलति साधुषु ।

३९. खलः सर्षपमात्राणि, पर-च्छिद्राणि पश्यति ।

४०. महान् महत्ये(ति ए)व करोति विक्रमम् ।

४१. नहि बन्ध्या विजानाति, गुर्वीं प्रसव-वेदनाम् ।

४२. मशक-दशन-मध्ये, दन्तिनः संचरन्ति ।

४३. दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू ।

४४. कृशे कस्याऽस्ति सौहृदम् ।

४५. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ।

४६. कस्याऽत्यन्तं सुखम् उपनतं, दुःखम् एकान्ततो वा ।

४७. मा जीवन् यः पराऽवज्ञा-दुःख-दग्धोऽपि जीवति ।

४८. शशिना तुल्य-वंशोऽपि, निर्गुणः किं करिष्यति ।

४९. तप्तेन तप्तम् अयसा घटनाय योग्यम् ।

५०. नीचैर् गच्छत्युु(ति उ)परि च दशा, चक्र-नेमि-क्रमेण ।

अभ्यास

१—नीचे लिखे अङ्कों से अङ्कित उक्तियों का अर्थ करो-

६-१०-१३-२१-२३-२८-३५-४३-४६-५० ।

२—नीचे लिखे पदों का अर्थ करो-

गताऽऽयुषि । समुच्छ्रयाः । भ्राष्ट्रकम् । सर्षप-मात्राणि । वेदनाम् । अयसा ।

एकपञ्चाशत्-तमः पाठः

सूक्ति-संग्रहः

भवन्ति नम्रास् तरवः फलोद्गमैर्,
नवाऽम्बुभिर् दूर-विलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्-पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवै(व ए)ष परोपकारिणाम् ॥१॥

निन्दन्तु नीति-निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणम् अस्तु युगाऽन्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥२॥

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्-विभागे,
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाऽग्रे।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निर्,
न भवति पुनर् अन्यद् भाषितं सज्जनानाम् ॥३॥

अश्व-मेध-सहस्रं च, सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्व-मेध-सहस्राद् हि, सत्यम् एवाऽत्यरिच्यत ॥४॥

अ-सतां सङ्ग-दोषेण, साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधन-प्रसङ्गेन , भीष्मो गो-हरणे गतः ॥ ५ ॥

साधूनाम् उपकर्तुं, लक्ष्मीं द्रष्टुं, विहायसा गन्तुम् ।
न कुतूहलि कस्य मनश् , चरितं च महाऽऽत्मनां श्रोतुम् ॥६॥

वदनं प्रसाद-सदनं, स-दयं हृदयं, सुधा-मुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां, केषां न ते वन्द्याः ॥ ७ ॥

विदुषां वदनाद् वाचः, सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश् चेद् न पराञ्चन्ति, द्वि-रदानां रदा इव ॥ ८ ॥

लक्ष्मीश् चन्द्राद् अपेयाद् वा, हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात् सागरो वेलां, न प्रतिज्ञाम् अहं पितुः ॥ ९ ॥

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं, श्रुत्वा चैवाऽवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥१०॥

यः परस्य विषमं विचिन्तयेत् ,
प्राप्नुयात् स कु-मतिः स्वयं हि तत् ।
पूतना हरि-वधाऽर्थम् आययौ,
प्राप सैव वधम् आत्मनस् ततः ॥११॥

स्वयं महेशः श्वशुरो नगेशः,
सखा धनेशस् तनयो गणेशः ।
तथाऽपि भिक्षाऽटनम् एव शम्भोर्,
बलीयसी केवलम् ईश्वरेच्छा ॥१२॥

यस्याऽस्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुण-ज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ति ॥१३॥

क्षते प्रहारा निपतन्त्य(न्ति अ)भीक्ष्णम्,
धन-क्षये दीप्यति जाठराऽग्निः ।
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति,
छिद्रेष्व(षु अ)नर्था बहुलीभवन्ति ॥१४॥

अर्थाऽऽतुराणां न गुरुर् न बन्धुः,
कामाऽऽतुराणां न भयं न लज्जा ।
चिन्ताऽऽतुराणां न सुखं न निद्रा,
क्षुधा-आतुराणां न बलं न तेजः ॥१५॥

गतं न शोचामि कृतं न मन्ये,
खादन् न गच्छामि हसन् न जल्पे ।

द्वयोस् तृतीयो न भवामि राजन्,
केनाऽस्मि मूर्खो वद कारणेन ॥१६॥

को न याति वशं लोके, मुखे पिण्डेन पूरितः।
मृदङ्गो मुख-लेपेन, करोति मधुर-ध्वनिम् ॥१७॥

अद्याऽपि दुर्निवारं, स्तुति-कन्या वहति कौमारम्।
सद्भ्यो न रोचते साऽसन्तस् तस्यै न रोचन्ते ॥१८॥

उदर-द्वय-भरण-भयाद्, अर्धाङ्गाऽऽश्रित-दारः।
यदि चैवं नो चेत्, कथम् अद्याऽपि कुमारः ॥१९॥

स्वयं पञ्च-मुखः पुत्रौ, गजानन-षडाननौ।
दिग्-अम्बरः कथं जीवेद्, अन्न-पूर्णा न चेद् गृहे ॥२०॥

संरोहति शरैर् विद्धं, वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं, न प्ररोहति वाक्-क्षतम् ॥२१॥

पिबन्ति नद्यः स्वयम् एव नाऽम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नाऽदन्ति सस्यं खलु वारि-वाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥२२॥

अयं निजः परो वेति, गणना लघु-चेतसाम् ।
उदार-चरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥२३॥

बहवो यत्र नेतारः, सर्वे पण्डित-मानिनः ।
सर्वे महत्त्वम् इच्छन्ति, तद् वृन्दम् अवसीदति ॥२४॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मः, विद्याऽभ्यासेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं, कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥२५॥

पुरुषाः बहवो राजन्, सततं प्रिय-वादिनः ।
अ-प्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२६॥

प्रायेण श्रीमतां लोके, भोक्तुं शक्तिर् न विद्यते ।
दरिद्राणां तु राजेन्द्र !, शुष्कं काष्ठं हि जीर्यति ॥२७॥

क्षमाखड्गः करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति ।
अ-तृणे पतितो वह्निः, स्वयम् एवो(व उ)पशाम्यति ॥२८॥

अभ्यास

१–नीचे लिखे पदों में संज्ञा, क्रिया और शब्दों का परिचय दो–

नवाम्बुभिः । अनुद्धताः । समाविशतु । न्याय्यात् पथः ।

प्रविचलन्ति । पन्नम् । वह्निः । अत्यरिच्यते । विक्रियाम् । कुतूहलि । सुधामुचः । वन्द्याः । पराञ्चन्ति । द्विरदाः । विषमम् । नगेशः । काञ्चनम् । अभीक्ष्णम् । जाठराग्निः । गजाननषडाननौ । दिगम्बरः । दुरुक्तम् । वाक्क्षतम् ।

२—उपरोक्त पद्यों में से दूसरे, तीसरे, ग्यारहवें, बारहवें, पन्द्रहवें, सत्रहवें, बीसवें, सताईसवें पद्य का अर्थ लिखो।

अर्थ-संग्रह व पाठ-सार

(१) ईश-स्तुतिः

आदि-देवः—आदिश्चाऽसौ देवश्च (कर्मधारय), पहला देव। जब आदि शब्द 'प्रथम' अर्थ में आता है तो केवल पुंलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है, चाहे विशेष्य किसी लिङ्ग का हो।

विश्वस्य— (इस) सारे का। यहां विश्व शब्द सर्वनाम है। इसका अर्थ 'जगत्' नहीं।

अप्रतिम-प्रभाव— संबोधन में प्रथमा। अप्रतिमः प्रभावो यस्य। जिस का अद्वितीय सामर्थ्य है।

कल्याणानाम् — मङ्गलमय (ज्योतियों) का। कल्याण शब्द यहाँ विशेषण है।

महसाम्—तेजों का, ज्योतियों का। महस् नपुंसक लिङ्ग है।

धुर्याम्—मुख्य, प्रधान, श्रेष्ठ।

प्रतिजहि—नष्ट कर, दूर कर। √हन् अदादि परस्मैपद, लोट् मध्यमपुरुष एकवचन।

पाठ-सारः

सर्वस्य कार्यस्याऽऽरम्भेऽविघ्नमस्तु, इति परमेश्वरः स्तोतव्यः प्रार्थ्यश्चेति शास्त्रकाराः।

मङ्गलनिकेतनं स भगवान् भक्त्या श्रद्धया च स्तुतः प्रार्थितश्चाऽवश्यं पापानि हरति, इष्टं प्रापयति, अनिष्टं च वारयति।

———

(२) सृष्टिः

तुङ्गाः—ऊँचे ।

निम्नगाः—नदियाँ ।

सौम्याः—शान्तस्वभाव वाले ।

सत्त्वाः—जानवर ।

मृगेन्द्रादयः—सिंह आदि ।

उग्राः—डरावने ।

श्वापदाः—जंगली जानवर जो शिकार कर खाते हैं ।

ओषधीषु—जड़ी बूटियों में । ओषधि— ह्रस्व इकार से भी लिखा जाता है और दीर्घ ईकार से भी — ओषधी । दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।

सर्गः—सृष्टि ।

भक्त्या–भक्ति से। पूज्येष्वनुरागो भक्तिः ।

श्रद्धया— श्रद्धा से । शास्त्रे गुरुजने च प्रत्यक्षवद् विश्वासः श्रद्धा ।

पाठ-सारः

अस्मिन् पाठे सृष्टेः सौन्दर्यं लेशतो वर्णितम् । ईश्वर एवाऽस्याः स्रष्टा, इत्यप्युक्तम् । नहि ततोऽन्य ईदृशं जगद् निर्मातुं समर्थः । जगद् एतद् दृष्ट्वा विद्वांसोऽपि परं विस्मयन्ते । श्रुतिश्चाऽऽह—"एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुष इति ।"

---

(३) प्रातर्-विहारः

समीरः—वायु ।

मन्द-मन्दम्—धीरे-धीरे । यह कर्मधारय सा माना जाता है। यहाँ क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

चक्रवालम्—दिशाओं का चक्र, क्षिति-ज ।

आचिन्वन्ति—ढाँप देते हैं ।

अरघट्टेन—रहट से।

उत्कर्षति—निकालता है।

केदारान्—क्यारियों को।

पुरा सूर्यातपश् चण्डो भवति—धूप तेज होने वाली है। यहाँ 'पुरा' निकट भविष्यत् के अर्थ में है। इस के योग में भविष्यत् क्रिया को बतलाने के लिये भी लट् का प्रयोग होता है।

पाठ-सारः

प्रातः किमप्य् अद्भुतं दृश्यं भवति, इत्येवाऽस्मिन् दर्शितम्। शीतलः पवनः प्रवहति। सूर्य उद्गच्छन् विश्वं प्रकाशयति। पुष्पाणां गन्धः सर्वस्य जनस्य मनो हरति। मनुष्याः पशवः पक्षिगणश्च स्व-स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते।

---

(४) हिमवतो वर्णनम्

यथार्थ-नामा—यथार्थं नाम यस्य (बहुव्रीहि)। अर्थमनतिक्रम्य—यथार्थम् (अव्ययीभाव), सच्चे नाम वाला।

शैल-राजः— शैलानां राजा (षष्ठी-तत्पुरुष), पहाड़ों में सर्व-श्रेष्ठ।

उपत्यकासु—पर्वत के पास की निचली भूमियों में।

यदधीना—यासु अधि (सप्तमी-तत्पुरुष)। स्मरण रहे 'अधीन' शब्द स्वतन्त्ररूप से वाक्य में बहुत कम प्रयुक्त होता है।

श्वापद-समाकुलाः—हिंसक जानवरों से भरी हुईं।

कन्दराः—कन्दरायें, गुफायें। कन्दरा—स्त्रीलिङ्ग, कन्दर—पुंलिङ्ग। यह शब्द नपुंसक नहीं होता।

ध्वनयन्ति—गुँजा देती हैं। 'ध्वानयन्ति' अशुद्ध रूप होगा।

धातुमान्—प्रचुरा धातवः सन्ति, अस्य इति। भूम्नि मतुप्। बहुत धातुओं वाला।

विहरण-रसिकाः—सैर के शौकीन।

अधित्यकाः—पर्वत की ऊपरली भूमियों को।

अहर्निशम्—अहश्च निशा च (समाहार-द्वन्द्व), द्वितीया विभक्ति, एकवचन। दिन-रात।

पाठ-सारः

अस्मिन् पाठे दर्शितम्—भुवनेऽस्मिन्न् उच्चैस्तमो हिमालयो नाम पर्वत-राजो भारतस्य उदीच्यां दिशि वर्तमानः शत्रुभ्यो रक्षां करोति। अनेका नदीश्च प्रवाह्याऽस्य देशस्य प्रदेशान् बहून् निषिच्य कृषियोग्यान् करोति, काष्ठानि च विविधानि प्रदाय महान्तमुपकारं करोति भारतस्य। बहवोऽत्र धातव उपलभ्यन्ते, इति समृद्धिमपि महतीं करोतीति कथमस्योपकारा वर्ण्यन्ताम्।

---

(५) पितृभक्तः श्रवणो मुनिः

वनमध्यम् अध्युषितानाम्—वन के बीच में रहते हुओं का। √वस् अधि-उपसर्गसहित सकर्मक बन जाता है। सकर्मक होने पर भी इससे 'क्त' प्रत्यय कर्ता अर्थ में भी आ सकता है, अर्थात् अध्युषितः =अध्युषितवान्।

निशीथे—आधी रात में। निशीथ पुंलिंग है।

अरण्यानीम्—बड़े जंगल को।

दीप्तं शरम्—चमकते हुए बाण को।

नृशंसेन—क्रूर ने।

मा स्म शोचः--शोक मत कर। 'शोचः' लङ् मध्यम-पुरुष एकवचन का रूप है, 'मा' के लगने से अट् (अ) का लोप होगया है।

संविग्नौ--व्याकुल।

ताम्यतः--क्षीण होते हुए के।

उद्हरत्--निकाला।

चिरयसि=चिरं करोषि--देर कर रहे हो।

व्यसनम्--विनाश, मृत्यु को।

हस्तिनः--हाथी का।

प्राणैश्च विना-कृतः — और प्राणों से जुदा कर दिया।

क्षते क्षार-प्रक्षेप इव—घाव पर नमक छिड़कने के समान।

प्रदेशम्--स्थान को। देश का एकदेश (भाग) प्रदेश होता है।

प्रनष्टा--नष्ट हो गई। यहाँ 'न्' को 'ण्' नहीं होता।

मोहं चाऽगच्छताम्—मूर्छित हो गये।

न चाऽभिभाषसे—(हम से) बोलता नहीं।

सान्त्वितः--ढारस दिया गया।

कालं करिष्यसि—मर जाओगे।

नापायन्—न अपायन् = न अप + आयन्. √इ (जाना) के लङ् प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप। जुदा न हुए।

पाठ-सारः

एकदा श्रवणो वने पिपासितयोः पित्रोः पानार्थं जलम् आनेतुं रात्रौ नद्यास् तटं जगाम। अस्मिन्न् एवाऽवसरे दशरथो नृपः स्व-प्रजा-वृत्त-ज्ञानाय परिभ्रमंस् तस्मिन्नेव वनोद्देशे समागच्छत्। 'बुग्-बुग्' इति शब्दं श्रुत्वा च झटिति बाणममुञ्चत्। तेन च बाणेन जलम् आददानः श्रवणो हतः। हा पितः! इत्यार्त-नादं श्रुत्वा 'मनुष्योऽयं न गजः' इत्यवधार्य राजा झटिति तं प्रदेशं गत्वा ऽपृच्छत् 'को भवान्' इति। श्रवणोऽहं पित्रोर् जलार्थम् अत्रागतः,

त्वया चाऽकारणं हतः। एतत् पात्रं जलपूर्णं नय, शीघ्रं च तौ जलं पायय, इत्युक्त्वा स प्राणान् अमुञ्चत्। दशरथो जलपात्रं नीत्वा शङ्कित-हृदयोऽपि सर्वं वृत्तम् अकथयत्। बहुधा संतोषितावपि तौ न संतुष्टिम् अभजताम्। राज्ञे शापं दत्त्वा च कालधर्मम् अयाताम्।

---

(६) पतिव्रता सीता

पति-परायणा—पतिः परम् अयनं यस्याः। पतिमात्र-शरणा।

कष्टम्—कष्ट देने वाला।

अप्रतिमेन—अद्वितीय (उदारता) से।

रक्षोभिः—राक्षसैः, राक्षसों से।

परीता-(परि+इता) घिरी हुई।

उपरता—मरी हुई।

आदर्श—आरसी, अर्थात् कुल-स्त्रियों के स्वरूप को दिखाने वाली।

पाठ-सारः

यदा पितुर्वचनं पालयन् रामश् चतुर्दश वर्षाणि वनम् अगच्छत्, तदा साध्वी सीताऽपि तेन सहाऽगच्छत्, लक्ष्मणोऽपि। तत्र पञ्चवटीनाम्नि वनोद्देशे वसत्सु तेषु रावणो नाम लङ्काया राजा छलेन ताम् अपहृत्य लङ्कां निनाय। अथ हनुमद्-आदि-वानर-साहाय्येन रावणं निहत्य रामः सीताम् आनीयाऽयोध्यायां राज्यं कर्तुं प्रावर्तत। ततः पर-गृह-वास-दूषिता सीता राज्ञा पत्नीति स्वीकृतेति लोकनिन्दाया भीतः, सर्वथा मर्यादा रक्षणीयेति निश्चितमतिः, मर्यादापुरुषोत्तमो रामः कठोरगर्भामपि सीताम् वनेऽत्यजत्।

एवं बहुविधानि दुःखानि सहमानाऽपि, स्वप्नेऽपि रामाय पत्ये नाऽद्रुह्यत्। अत एवाऽद्यापि पतिव्रतानां धुरि स्थिता, सादरं स्मर्यते प्रणम्यते च।

---

(७) शकुन्तलो(ला-उ)पाख्यानम्

अ-संनिहितः—अनुपस्थित।

निर्व्याज-मनोहरेण शरीरेण—बिना बनावट के (स्वभाव से) सुन्दर शरीर से।

हृद्याकृतिम्—सुन्दर आकार वाले को।

प्रत्याख्यातवान्—अस्वीकार कर दिया। जवाब दे दिया।

वराकीम्—बेचारी को।

अथ कस्यचित् कालस्य—अब कुछ समय के पीछे। यहाँ 'पश्चात्' आदि शब्द के न होने पर भी कुछ हानि नहीं। ऐसा शिष्टव्यवहार है।

परं च हृषितवान्—और बहुत प्रसन्न हुआ। √हृष् सेट् है। 'हृष्ट' व्याकरण के अनुकूल नहीं।

दृष्टमात्रा—दृष्टैव।

प्रणयेन—प्रेम से। 'प्रणय' पुंलिङ्ग है।

उटज—पुंलिङ्ग तथा नपुं०—झोंपडी।

दुष्यन्ताय विसृष्टवान्—दुष्यन्त के पास भेज दिया। यहाँ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

पाठ-सारः

कदाचिद् दुष्यन्तो नाम प्रतापवान् राजा मृगया-प्रसङ्गेन कण्वस्य ऋषेर् आश्रमं प्राप्तः, तदा तत्राऽऽश्रमे कण्वो नासीत्। तच्छिष्या अपि समिद्-आहरणाय बहिरगच्छन्। केवलं शकुन्तला तत्-सख्यौ धात्री च तत्रासन्। दृष्टमात्रा शकुन्तला नृपस्य मनोऽहरत्। परस्परं प्रणयेन तयोः परिणयोऽभूत्। ततो विवाहे संपन्ने राजा स्वम् अङ्गुलीयकम् अभिज्ञानमिति दत्त्वा 'शीघ्रमेव त्वां राजधानीं नेष्यामि' इत्युक्त्वा हस्तिनापुरं प्रति गतः।

शकुन्तला च तत्-प्रेम्णा बाह्यविषयेषु शून्यमना अभवत्।

अत्राऽन्तरे दुर्वासा इति नामा सुलभकोपो महर्षिर् आश्रमं प्रविशति उटजं चोपागच्छति। परं शकुन्तला भर्तृगत-मना न तं पश्यति न च सत्करोति। ततः स ताम् एवं शपति--शकुन्तले! त्वं यं स्मरसि स त्वां विस्मरिष्यतीति।

अथाऽऽश्रमम् आगत्य विदित-वृत्तान्तः कण्वस् तां दुष्यन्ताय विसृष्टवान्। परं शाप-प्रभावेण दुष्यन्तस् तां विस्मृतवान्, न चाऽङ्गीकृतवान्। ततस् तां तस्या जननी मेनका नामाऽप्सराः स्वर्गं नीतवती, तत्र सा सर्व-दमनं नाम सुतं सूतवती। कालान्तरे तत्राऽऽगतेन राज्ञा स बालः सिंह-शावकेन सह क्रीडन् दृष्टः पृष्टश्च 'कस् ते तातः, का च ते जननीति? तेनोक्तम्—दुष्यन्तो मे तातः, शकुन्तला च जननीति। तच् छ्रुत्वा राजा परमं हर्षं गतः, शकुन्तलां सर्व-दमनं च राजधानीम् आनिनाय। स एव सर्व-दमनः पश्चात् 'भरत' इति नाम्ना प्रसिद्धो नृपोऽभवत्।

---

(८) वणिग्-लोलुपता

अधिष्ठाने--नगर में। अधिष्ठान--नपुंसकलिङ्ग है।

देशान्तर-गमन-मनाः--देशान्तरे गमनं देशान्तर-गमनम्, तत्र मनो यस्य—दूसरे देश में जाने की इच्छा वाला।

शाश्वतम्--नित्य।

संनिहिताऽपायः-- संनिहितोऽपायो यस्य, जिसका विनाश निकट ही है।

उत्पादि (नपुंसकलिङ्ग)--उत्पादोऽस्याऽस्ति, उत्पत्ति वाला।

प्रलपितम्—बकवास।

हरेच् श्येनो बालकम्—बाज लड़के को उठा ले जा सकता है। हरेत् = हर्तुं शक्नुयात्।

पाठ-सारः

कश्चिज् जीर्णधन-नामा वणिग् देशान्तरं गन्तुकामः स्वपूर्व-पुरुषोपार्जितां लोह-तुलां कस्यचिच् श्रेष्ठिनो गृहे निक्षेपीकृत्य गृहाद् निरगच्छत् । कालान्तरेण प्रत्यागत्य स्व-तुलां ययाचे । "सा तु मूषिकैर्भक्षिता" इत्युक्तः सोऽवदत्—तथाऽस्तु । परं तत्पुत्रं स्नानाऽर्थं नदीं नीत्वा तत्रैव च गिरि-गुहायां संस्थाप्य तद्-द्वारं च शिला-खण्डेन पिधायाऽऽगत्य च उवाच—श्रेष्ठिन् ! पश्यतो मे श्येनस् तव पुत्रं नदी तटाद् उत्थाप्योदडीयत । इति श्रुत्वा तेन राज्ञोऽग्रे निवेदितम् । राज्ञा पृष्टश्च स तुलासंबधि सर्वं वृत्तम् आ मूलाद् न्यवेदयत्—तच् छ्रुत्वा राज्ञा उभावपि संबोध्य तुला-पुत्र-प्रदानेन संतोषितौ ।

(९-१०) मूर्ख-पण्डितानाम्

पठितुम् आरब्धाः = पठितुम् आरब्धवन्तः, कर्तरि क्तः । पढ़ना शुरु किया ।

द्वादशाऽब्दान् यावत्—बारह बरसों तक । 'अब्द' पुंलिङ्ग है, नपुंसकलिङ्ग नहीं । यावत् (=तक) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ।

उत्कलापयित्वा—प्रशंसा से फुला कर । उत्कलापः = उद्गत-कलापः = पर निकले हुए (मोर) । उस अवस्था में मोर फूला हुआ होता है और अपने आप को अधिक सुन्दर समझता है ।

व्यसने—आपत्ति में ।

धर्मस्य त्वरिता गतिः—भाव यह है कि यदि धर्माचरण में विलम्ब किया जाय तो समय निकल जाता है और फिर

धर्म होता ही नहीं। पर इन शास्त्राक्षर जानने वालों ने कुछ नहीं समझा।

स्तोकं मार्गम्—थोड़े से मार्ग को 'स्तोक' से हिन्दी का 'थोक' बना है, पर अर्थ बदल गया है।

पलाश-पत्त्रम् आयात्—आते हुए ढाक के पत्ते को। बहुत सी पुस्तकों में 'आयान्तम्' ऐसा पाठ है, सो अशुद्ध है। क्योंकि 'पत्त्र' शब्द नपुंसक है।

सूत्रिकाः—(स्त्रीलिङ्ग) सूत।

पाठ-सारः

'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्' इति, इह निदर्शयितुम् इच्छति कविः। ग्रन्थाऽक्षराऽर्थाऽनुसारिणो विवेक-विधुरा ग्रन्थकाराऽभिप्रायम् अजानन्तोऽन्यथा चरन्ति मूढाः, विडम्बनां च महतीं लभन्ते। 'श्मशाने यस् तिष्ठति स बान्धवः' इत्यादीनां नीति-वाक्यानां वास्तवम् अर्थम् अबोधन्तः केचिद् ब्राह्मणाः शास्त्रेषु कृत-यत्ना अपि, अस्थाने बन्धुत्वादि कल्पयन्तो लोकस्य हास्या भवन्तीति।

---

(११) चौर-चातुर्यम्

सन्धिद्वारि—सेंध के मुंह पर। 'सन्धि' पुंलिङ्ग है। 'द्वार्' स्त्रीलिङ्ग है।

प्रशासितृ-पुरुषैः—अधिकारियों से। √शास् सेट् है।

राज्ञे निवेदिताः—राजा के सामने पेश किये गये।

मर्त्य-लोके—मर्त्यानां लोकः—मर्त्यलोकः, मनुष्य-लोक में।

सर्षप-सदृश्यः—सरसों जैसी। °सदृशाः ऐसा पाठ अशुद्ध है। स्त्रीलिङ्ग में °सदृश्यः ऐसा होना चाहिये।

वचनं व्यभिचरिष्यति—वचन मिथ्या होगा (शब्दार्थ—अर्थ को छोड़ जायगा)।

अ-स्तेयिनः—चोरी न करने वाले।

अट्टहासम्=अतिशयितो हासः। खिलखिला कर हंसना।

प्रस्तावे—अवसर पर। 'प्रस्तावः स्याद् अवसर' इत्यमरः।

हासेन विद्यया—हंसीरूपी विद्या से।

वल्लभतां गतः—प्यारा बन गया वल्लभस्य भावः—वल्लभता।

पाठ-सारः

चत्वारश् चौराः कदाचित् कस्याऽपि राज्ञो गृहे चौर्यं कुर्वाणा रक्षा-पुरुषैर् धृताः। राज्ञा च तेषां वधार्थम् आदेशः कृतः। घातकैर् नीत्वा यावत् तेषु त्रयो व्यापादिताः, तावत् सुबुद्धिना चतुर्थेन चौरेण भणितम्—घातकाः! अहं सुवर्ण-कृषिं जानामीति, तां गृहीत्वाऽहमपि हन्तव्यः। इत्युक्तास्ते गत्वा राजानं न्यवेदयन्। राजा च तम् आहूय सर्वं वपनविधिम् अपृच्छत्। चौरेण सर्वो विधिर् निवेदितः। यदा राज्ञि राजपुरुषेषु च न तादृशश् चौर्य-कर्म-रहितो कोऽपि निर्णीतोऽभूत् तदा तद्-बुद्धि-कौशलेन परं प्रीतिमान् नृपस् तस्य मृत्यु-दण्डं क्षमित्वा तं स्वपार्श्वेऽस्थापयत्। बालाः! पश्यत बुद्धिप्रभावं, येन मृत्युम् उत्तीर्णश् चौर इति।

———

(१२) वृद्धस्य व्याघ्रस्य

चरन्—विचरन्=घूमता हुआ।

कुश-हस्तः—कुशो हस्ते यस्य (बहुव्रीहि), जिस के हाथ में कुशा पकड़ी हुई है।

पान्थः—यात्री, मुसाफिर। पन्थानं नित्यं गच्छति, यात्रा-शील।

मारात्मके—हिंसके, मार आत्मा स्वरूपं यस्य। मारने वाले में।

स्नान-शीलः—स्नानं शीलयतीति णः प्रत्ययः। नित्य स्नान करने वाला।

इज्या—यज्ञ।

लोक-प्रवादः—लोकवादः, प्रसिद्धि।

आत्मौपम्येन—उपमैव औपम्यम्। आत्मन औपम्यम्, तेन। अथवा—आत्मा उपमा (उपमानं) यस्य स आत्मोपमः, तस्य भावः, तेन। अपनी सदृशता से।

नीरुजस्य—नीरोग का।

औषधैः—दवाइयों से। औषध नपुंसकलिङ्ग है।

तद्वचः-प्रतीतः=तस्य वचसि प्रतीतः (=विश्वस्तः), उस के वचन में विश्वास किये हुए।

अतिरिच्यते— अतिरिक्तो भवति। सब से बढ़ कर है।

नदीनाम्—इत्यादि में षष्ठी संबन्धमात्र में हुई है। उत्तरार्ध में 'स्त्रीषु' इत्यादि में वैषयिक अधिकरण में सप्तमी हुई है। इस विभक्ति-भेद में विवक्षा ही एकमात्र कारण है।

शस्त्र-पाणीनाम्—हाथ में शस्त्र लिये हुओं का। 'नित्य-योग' के न होने से बहुव्रीहि से इनि प्रत्यय के लिये कोई स्थान नहीं।

पाठ-सारः

कश्चिद् वृद्धो व्याघ्रः सरसस् तीरे स्थितो यं कम् अपि पथिकमाहूय कथयति–भो ! इदं सुवर्ण-कङ्कणं गृह्यताम्। इतिवादिनस् तस्य 'हिंस्रोऽयम्' इति ज्ञात्वा कोऽपि विश्वासं न करोति। परं कश्चिन् मूर्खो लोभाकृष्टस् तस्य विश्वासं प्राप्य मृत्युं प्राप्नोति।

---

(१३) बधिरस्य

ज्वरार्तं श्रुत्वा—ज्वरयुक्त है ऐसा सुन कर। ज्वरेण ऋतः = ज्वरार्तः (तृतीयातत्पुरुष) 'आर्त' शब्द भी आ(ङ्) ऋत से बना है। उपसर्गादृति धातौ—इति वृद्धिः।

आपृच्छ्य—आमन्त्र्य, (जाने की) अनुमति ले कर।

परिजनम्—(पुंलिङ्ग) नौकर-चाकर।

अर्ध-चन्द्र-दानेन—गलहस्तिकया गले को अर्धचन्द्राकार हाथ से पकड़ कर।

निष्कासितः — बाहिर निकाल दिया गया। √कस् भ्वादि परस्मैपद, जाना। √निष्कस्, निकलना।

पाठ-सारः

कश्चिद् बधिरो रुग्णं मे मित्रम् इति श्रुत्वा तं द्रष्टुकामो गृहात् प्रस्थितो मार्गे स्वात्मानुरूपं प्रश्नोत्तराणि कल्पयन् मित्रसकाशं प्राप्य तद्विषये तत्तत् पृच्छति, यदा च तस्योत्तराण्य् अश्रुत्वा चिन्तितपूर्वाणि प्रतिकूलान्युत्तराणि ददाति तदा प्रकुपितो रुग्णो भृत्येन तं बहिष्कारयति। अतो यावत् परवचनं स्वकर्णाभ्यां न शृणुयात्, यावच्च न सम्यग् विजानीयात् किमुक्तम् अनेनेति, न तावद् बुद्धिमता किमपि वक्तव्यम् इति।

---

(१४) शृगालीसुत-सिंहशावकानाम् ।

सिंह-दम्पती—सिंह और सिंही का जोड़ा। जाया च पतिश्च (द्वन्द्व-समास), पति और पत्नी। समास में आदर के कारण जाया (=पत्नी) शब्द पहले रखा गया है। सिंहश्च सिंही च=सिंहौ। सिंहौ च तौ दम्पती च=सिंहदम्पती।

पुत्र-द्वयम्—पुत्रयोर्द्वयम्, दो पुत्रों को।

अजीजनत्—उत्पन्न किया, जन्म दिया। √जन्, णिच्, लुङ्।

आसादितम् — प्राप्त किया। आ √सद् — चुरादि, जाना, प्राप्त करना।

लिङ्गिन्—भिक्षु, संन्यासी।

अकार्य-शतम्—सौ पाप।

अज्ञात-जाति-विशेषाः—जातेर्विशेषः (भेदः) जातिविशेषः। ज्ञातो जातिविशेषो यैः, ते ज्ञातजातिविशेषाः (बहुव्रीहि) न ज्ञातजातिविशेषा अज्ञातजातिविशेषाः—नञ्-तत्पुरुष। जिन्होंने जातिभेद नहीं जाना।

प्रचलितौ—चलितुमारब्धौ—चल पड़े।

विचेष्टितम्—उल्टी चेष्टा।

प्रस्फुरिताधरपल्लवः—फड़कते हुए कोमल होंठों वाला। अधरौ पल्लवाविव अधरपल्लवौ, पल्लव पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग—कोंपल।

ताम्र-लोचनः—ताम्रे लोचने यस्य, लाल आँखों वाला।

पुत्रक—हे प्यारे पुत्र!

मृत्यु-पथम्—मृत्योः पन्थाः, तम्। मृत्यु के मार्ग को।

पाठ-सारः

कोऽपि शृगाल्याः शिशुः वने भ्रमतः कस्यचित् सिंहस्य हस्तगतोऽभूत्। स 'बालः' इति मत्वा न तं व्यापादितवान्, परं जीवन्तमेवाऽऽनीय भार्यायै दत्तवान्। सा चाऽपि वात्सल्येन

पुत्रवत् तं स्वीय-स्तन्येनाऽपालयत्। अथैकदा स सिंही-सुताभ्यां भ्रमन् गजमेकं दृष्ट्वा गृहं प्रत्यधावत्। एतद् दृष्ट्वा सिंही-सुतावपि ज्येष्ठभ्रातृत्वात् तमन्वगच्छताम्। परं गृहे गत्वा तं निनिन्दतुः। स्व-निन्दां श्रुत्वा शृगाली-सुतः कुपितोऽभूत्। अथ कुपितं तं शमयन्ती सिंही प्राह--पुत्रक! शृणु मद्-वाक्यम्--यावदिमौ मे सुतौ बालौ स्तः, स्वस्य च तव च जाति-भेदं न जानीतस् ततः पूर्वमेव त्वयेतो गन्तव्यम्। अन्यथा कदाचिद् इमौ त्वां हन्यातामिति। इदं श्रुत्वा स शृगाली-सुतः स्वजातीयेषु गत्वा मिलितः। स्वभावो दुरतिक्रम इत्यभिप्रायः।

---

(१५) सिंह-शशकयोः

उपढौकयामः—भेंट करेंगे। √ढौक् भ्वादि, आत्मनेपद, जाना। पंजाबी—ढुकना।

विनीतिः—विनय, नम्रता, अनुनय

सिंहाऽनुनयेन—सिंह को मनाने से, प्रार्थना करने से।

क्षुधा पीडितः—भूख से तंग। क्षुधा पीडितः—दो भिन्न-भिन्न पद हैं, समास नहीं। समास में 'क्षुत्पीडितः' ऐसा रूप होगा।

सिंहान्तरेण — अन्यः सिंहः सिंहान्तरम्, तेन। दूसरे सिंह से।

क्रोधाध्मातः—क्रोध से भरा हुआ आध्मात=फूला। √ध्मा, फूंक मारना, बजाना, तपाना।

पञ्चत्वम्—मृत्यु। शरीर पाञ्चभौतिक है। पांच भूत ये हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। इन भूतों से शरीर बना है। इसका इन भूतों में बंट जाना, इन व्यक्तियों का अपनी-अपनी समष्टि में मिल जाना ही मृत्यु है। इसी लिये इसे 'पञ्चत्व' कहा है।

पाठ-सारः

कस्मिंचिद् वने कोऽपि दुर्दान्त-नामा सिंहः प्रतिवसति स्म। स च प्रतिदिनं बहून् वन-पशून् हन्ति स्म। तद् दृष्ट्वैकदा वन-पशुभिर् मिलित्वा निश्चित्य च एकैकः पशुः सिंहस्याऽऽहारार्थं नियतसमये प्रेषितुम् आरब्धः।

अथैकदा वृद्ध-शशकस्य वारः समायातः। गच्छता तेन चिन्तितम्—समये प्राप्तस्याऽपि रक्षणं न भविष्यतीति चिरेण मया गन्तव्यम्। चिरेण च प्राप्तं तं दृष्ट्वा सकोपेन सिंहेनोक्तम्—कुतो विलम्बितम्। तेनोक्तं निरुद्धोऽस्मि मार्गे सिंहान्तरेण। तेन च 'दर्शय मे तं पामरम्', इति कथितम्। ततः स मूढं तं सिंहमेकं कूपमानयति, तस्यैव प्रतिबिम्बं च तज्जले दर्शयति। तदा सिंहान्तरम् एतद् इति बुद्ध्या स तम् आक्रमितुं कूपे पतति म्रियते च। तस्माद् 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, इति स्फुटं भवति॥

---

(१६) लुब्धक-कपोतानाम्

नाना-दिग्-देशात् — दिशश्च देशाश्च इति दिग्देशम् (समाहार-द्वन्द्व) नाना च तद् दिग्देशं च इति नानादिग्देशम् (कर्मधारय)। तस्मात्। नाना दिशाओं और देशों से।

अवसन्नायां रात्रौ—रात बीत जाने पर। अव—√सद्—क्त।

वियति—आकाश में। वियत् नपुंसक-लिंग है।

निरूप्यताम्—देखो, पड़ताल करो

ईर्ष्यी—ईर्ष्या वाला। ईर्ष्यिन्—इन्नन्त है। दूसरे की संपत्ति को न सहना ईर्ष्या है

क्रोधनः—क्रोध-शील।

वहु-श्रुताः--बहु श्रुतं येषां ते, बहुत पढ़े हुए।

अवलम्बिताः—ठहर गये।

कापुरुष-लक्षणम्--क्षुद्र का चिह्न है। कुत्सितः पुरुषः कापुरुषः। कुपुरुषः भी कह सकते हैं।

हातव्याः--छोड़ देने चाहियें।

भूतिम्--कल्याण, ऐश्वर्य को।

तन्द्रा—ऊँघ।

दीर्घसूत्रता—थोड़े समय में होने वाले कार्य को अधिक समय में करना।

तुषेण--तोह से।

विवदिष्यन्ति—झगड़ा करेंगे। व्याकरण के अनुसार 'विवदिष्यन्ते' ऐसा आत्मनेपद में रूप होना चाहिये।

विधिः--दैव।

चकितः--भीतः, डरा हुआ।

तूष्णीम् (अव्यय), चुप-चाप।

ससंभ्रमम्—जल्दी से।

प्रत्यभिज्ञाय—पहचान करके।

रोग-शोक-परीतापाः--रोग, शोक और दुःख। परिताप और परीताप दोनों शुद्ध हैं।

छिन्धि--(तू) काट। √छिद्—(रुधादि), लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन।

यथा-शक्ति—शक्तिम् अनतिक्रम्य, शक्ति के अनुसार। अव्ययीभाव।

त्रैलोक्यस्य—तीन लोकों के। त्रयो लोकाः समाहृताः त्रिलोकी। सैव त्रैलोक्यम्। स्वार्थे ष्यञ्।

पाठ-सारः

स-परिवारः कश्चित् चित्र-ग्रीव-नामा कपोत-राज एकदा आकाश-मार्गेण गच्छन् वने लुब्धकेन विकीर्णान् तण्डुलान् अवलोक्य स-विस्मयं परिजनम् आह—कथम् अत्र निर्जनेऽरण्ये तण्डुलानां संभव इति ब्रुवति तस्मिन् चित्र-ग्रीवे शेषाः कपोतास् तत्र तान् ग्रहीतुं न्यपतन् जालेन च बद्धा बभूवुः।

ततश् चित्र-ग्रीव-संमत्या समष्टि-बलेन स-जालम् आकाशे समुत्पतिताः। लुब्धकस् तु विफल-मनोरथो भूत्वा गृहं प्रत्यावर्तत। ते तु हिरण्यक-नामानं मूषिकं मित्रं प्राप्य छिन्न-पाशा यथाऽऽगतं गताः।

कल्याणम् इच्छता पुरुषेण यानि-कानि च बहूनि मित्राणि कर्तव्यानि, इत्येष उपदेशः।

---

(१७) मृग-काक-शृगालानाम्

अरण्यानी—महद् अरण्यम् अरण्यानी, बड़ा जंगल।
सुललितम्—कोमल।
पौरुषम्—वीरता। पुरुषस्य कर्म।
सख्यम्—सख्युर् भावः। मित्रता।
आगन्तुना—नये आये हुए से।
मैत्री—मित्रस्य भावः। (मैत्र्यम् इत्यपि), मित्रता।
उदार-चरितानाम्—बड़े चरित्र वालों के लिये।
उत्तरोत्तरेण—विवाद से।
विस्रम्भालापैः—विश्वास की (=गुप्त) बातों से।
निभृतम्—एकान्त में, गुप्तरूप से।
फलिता—सिद्ध हो गयी।
कपट-प्रबन्धेन—षड्यन्त्र से।
असृक्—लहू। नपुंसकलिङ्ग।

उल्लसितः—खिला हुआ, प्रसन्न।
प्रदोष-काले—रात्रि के आरम्भ में। प्रारम्भो दोषायाः प्रदोषः।
अवधीरित-सुहृद्वाक्यस्य—सुहृदो वाक्यम् सुहृद्वाक्यम्। अवधीरितं च सुहृद्वाक्यं (कर्मधारय), तिरस्कार किये हुए मित्र के वचन का।
दीप-निर्वाणम्—दीपस्य निर्वाणम्। दीप का बुझना।
विष-कुम्भम्—विष के कुम्भ को। 'कुम्भ' पुंलिङ्ग है।
हलाहलम्—तीव्र विष। इसे 'हालहलम्, हालाहलम्' ऐसे भी लिखते हैं।

संग्रहीतुम—इकट्ठा करने के लिये।

अन्तरिते—दृष्टि से ओझल होने पर।

पाठ-सारः

कुत्रापि वने मृग-काकौ मित्रे निवसतः। एकदा पृथग् भ्रमन्तं मृगं विलोक्य तन्-मांस-लोलुपः कश्चित् शृगालस् तेन सह मित्रतां विधाय स्थितः। कदाचिच् च तं मृगं क्षेत्रम् एकं सस्य-पूर्णं दर्शितवान्। नित्यं तत्र गत्वा चरन् मृगः कदाचित् पाशैर् बद्धोऽचिन्तयत्। आगतं शृगालं च पाश-च्छेदनं प्रार्थितवान्। परं तेन तद्-वचनं नाऽऽदृतम्। अत्राऽन्तरे काकेनाऽऽगत्य तद्-रक्षणोपायस् तथा कृतो येन तत् स्थाने शृगाल एव क्षिप्तेन क्षेत्रपति-दण्डेनाऽऽहतः पञ्चत्वं च गतः।

यः कश्चित् कस्यचित् कृते कूपं खनति दुर्मतिः स एव तस्मिन् पततीति निष्कर्षः।

---

(१८) काकोलूकीयं वैरम्

काकोलूकीयम्—काकश्च उलूकश्च इति काकोलूकम् (समाहार द्वन्द्व)। कौओं और उल्लुओं का नित्य वैर होने से समाहार द्वन्द्व ही होगा इतरेतर नहीं। काकोलूकमिव काकोलूकीयम्।

अ-राजके—देश में राजा के न होने से। अविद्यमानो राजाऽत्र इति अ-राजकः (देशः)।

स्तम्भिताऽभिषेकाः—स्तम्भितोऽभिषेको यैः — जिन्होंने अभिषेक (राजतिलक) रोक दिया है।

तेऽभिरुचितम्—तुझे पसन्द है। 'ते' यहाँ चतुर्थी विभक्ति है, षष्ठी नहीं।

उत्सादं गताः—नाश को प्राप्त हो गये हैं।

कारण्डव—पुंलिङ्ग, जलकुक्कुट, बत्तख ।

चक्रवाक—पुंलिङ्ग, चकवा ।

हारीत—विशेष कबूतर ।

जीवञ्जीवक—पुंलिङ्ग चकोर ।

अप्रसन्न-दृष्टिः—घोरचक्षु, क्रूर दृष्टि वाला ।

दिवान्धः—विशेषण, दिन के समय अन्धा । उल्लू का नाम भी है ।

स्वभाव-रौद्रम्— स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी ।

अनाश्रयणीयगुणोपेतः— अनाश्रयणीयैः गुणैर् उपेतः,न ग्रहण करने योग्य गुणों से युक्त ।

समवायं कृत्वा—इकट्ठा करके । समवाय पुंलिङ्ग है ।

संप्रधारयिष्यामः — विचार करेंगे । निश्चय पर पहुँचेंगे ।

सहसा— (अव्यय), एक दम, झटपट ।

विदधीत—करे, वि√धा, लिङ् ।

आपदां पदम्—आपत्तियों का कारण ।

भद्रपीठ-गतः—भद्रपीठ (बढ़िया आसन) पर बैठा हुआ । भद्रपीठं गतः । (द्वितीया तत्पुरुष) ।

अकाण्डे—अनवसरे, अचानक । अव्ययीभाव होने से अव्यय है । अव्यय होने पर भी अदन्त अव्ययीभाव से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ रह सकती हैं ।

अकारण-वैरिणः—बिना कारण वैरी का । अकारणं वैरिणः, ऐसा विग्रह होगा । सुप्सुपा समास ।

उपलब्ध-वार्तः—उपलब्धा वार्ता येन सः, जिस ने समाचार प्राप्त किया है ।

व्याघातः—विघ्न ।

समुज्झिताऽभिषेकः —जिस का अभिषेक छोड़ दिया गया है ।

पाठ-सारः

कदाचित् पक्षिणो मिलित्वोलूकं राज्येऽभिषेक्तुं निश्चित्य तम् आहूय च भद्र-पीठे स्थापयित्वाऽभिषेक्तुं प्रवृत्ताः । तस्मिन्न्

एवाऽवसरे वायसेन केनापि कुतोऽप्या(पि आ)गत्य दिवाऽन्धस्याऽस्य स्वामित्वेन न कोऽपि लाभः, इत्यु(ति उ)क्त्वा ते तत्कार्यात् निषिद्धाः। तेनाऽसंतुष्ट उलूकः प्राह—अद्यारभ्य वायसैः सहाऽस्माकं वैरम् उत्पन्नम् इति।

(१९–२१) रामस्य राज्याभिषेकः

सचिवैः—मन्त्रियों के साथ। सचिव तीन प्रकार के होते हैं। धीसचिव, कर्मसचिव, और नर्मसचिव। परामर्श देने वाले मन्त्री, कर्म को निष्पन्न करने वाले तथा राजा के विनोद में साथी (विदूषक आदि)।

यौवराज्यम्—युवराजपद। युवा च असौ राजा च = युवराजः। तस्य भावः कर्म वा यौवराज्यम्।

अभ्यनन्दन्—पसन्द किया।

पौर-जानपदाः—शहरी तथा देहाती लोग। पुरे भवाः पौराः। जनपदे भवाः जानपदाः। स्मरण रहे 'जनपद' शब्द पुंलिङ्ग ही होता है।

कालः पिबति तद्रसम्—समय उसके रस को पी जाता है। भाव यह है कि असमय में किया गया कार्य नीरस—फीका पड़ जाता है।

संभृतेषु—इकट्ठा किये जाने पर।

यज्ञ-संभार—पुंलिङ्ग, यज्ञ की सामग्री।

पुलकित-गात्रः— पुलकितानि गात्राणि यस्य, रोमाञ्चित अङ्गों वाला। पुलकाः संजाता अस्य इति पुलकितम्।

सर्वाश्च प्रकृतयः—सभी मन्त्री लोग।

समुदितेन जनेन--इकट्ठे हुए हुए लोगों ने ।

आ-बाल-वृद्धम्—बालाश्च वृद्धाश्च वालवृद्धाः (द्वन्द्व) । वालवृद्धान् अभिव्याप्य आबालवृद्धम् (अव्ययीभाव), बच्चों और बूढ़ों समेत ।

इन्दु-दर्शन-समुत्सुकाः--इन्दोर्दर्शने समुत्सुकाः, चन्द्रमा के दर्शन की चाह वाले। विग्रह में 'दर्शनेन' भी कह सकते हैं, पर 'दर्शनाय' कभी नहीं ।

अमन्दाऽऽनन्द-सन्दोहम् — बहुत बड़े आनन्दराशि को । मन्द = अल्प, थोड़ा । अमन्द= बहुत, अधिक । सन्दोह—पुंलिङ्ग, राशि, ढेर ।

सुरभिणा वारिणा-- सुगन्धयुक्त जल से ।

संवाधः--भीड़ ।

सौधानि—राजाओं के विशाल भवन । 'सुधा' चूने को कहते हैं, सुधा से वने हुए ।

तोरणैः—शोभार्थ बनाये गये बाहिर के दरवाजों से ।

प्रकीर्णकमलोत्पलाम् — विखेरे हुए कमल और नीलकमलों वाली को ।

कष्टं निःश्वसती—कठिनता से साँस लेती हुई । 'निःश्वसन्ती' ऐसा कहना अशुद्ध होगा ।

कषायम्—कसैला ।

भयङ्कराः परिणतीः — भयानक परिणामों को । स्त्रीलिङ्ग में 'भयङ्करा' होता है, 'भयङ्करी' नहीं ।

वेत्थ—तू जानती है !

उपस्थास्यसि—सेवा करेगी । उप√स्था का अर्थ पास बैठना है ।

अनभ्यन्तरः--बाह्य, बाहिर रहने वाला ।

उदर-भरण-परा—उदरस्य भरणमेव परं लक्ष्यं यस्याः सा, अपना पेट भरने में ही लगी हुई ।

पशु-वृत्तिम्—पशुओं के व्यवहार को ।

श्रुति-समयैः--शास्त्रके सिद्धान्तों से ।

सत्य-सन्धः— सच्ची प्रतिज्ञा वाला। सत्या सन्धा यस्य।

तव प्रिय-चिकीर्षया— तुझे प्रसन्न करने की इच्छा से। कर्तुमिच्छा=चिकीर्षा।

सान्त्व-वचनैः—अत्यन्त मधुर वचनों से।

समीहितम्—इष्ट, मनोरथ।

अनुनयता—मनाते हुए ने।

विस्रब्धम—निःशङ्क होकर। 'विस्रब्ध' ऐसा शुद्ध रूप है। 'विश्रब्ध' यह अशुद्ध है, यद्यपि बहुत देखने में आता है।

उदारमुदाहरत्—उदारता पूर्वक कहा।

निशम्य—सुन कर।

श्वोभूते—प्रातः होने पर।

क्षिप्रतरम्—बहुत जल्दी।

प्रयाहि—चल पड़ो।

प्रेमाऽतिशयेन—स्नेह की अधिकता से।

कैकेय्योपनीतानि— कैकेयी से लाये हुए।

अम्लान-मुखः—जिसका मुख मुर्झाया नहीं।

स्व-जनम्—अपने बन्धुओं को।

दुःखाऽर्णवे—दुःख-सागर में।

आकार-विभ्रमः—आकार का परिवर्तन।

समस्थः—सुखकी अवस्था वाला।

विषमस्थः—संकट में पड़ा हुआ।

जहाति—छोड़ता है।

पाठ-सारः

पुरा किल महा-राजो दश-रथः स्व-वृद्धत्वम् अवलोक्य रामाय राज्यं दातुम् ऐच्छत्। सचिवान् पुरोहितं वसिष्ठं चाऽऽमन्त्र्य निश्चितवान्—"श्वः प्रभात एव रामो यौवराज्येऽभिषेचनीय इति। इमां वार्तां श्रुत्वा सर्वे पौराः प्रसन्ना अभवन्। सचिवाऽऽदीन् महाजनान् अभिषेकार्थम् उचितोपकरणानि संगृह्यन्तामित्या(ति आ)दिश्य महा-राजः सायं कैकेय्या भवनम् अगच्छत्। तत्र च स किमपि वि-चित्रम् एव नाटकं दृष्टवान्,

कैकेयी मन्थरया प्रकोपिता कोप-भवने भूमौ विवर्तते विकीर्ण-केशी। राजा वारं-वारं कारणं पृच्छति। तदा सा रामस्य चतुर्दश वर्षाणि वने वासं भरतस्य च राज्यं याचते, वरौ च पुरा दत्तौ स्मारयति। यदा सा बहुविधं प्रबोधिताऽपि स्व-हठं न परित्यजति तदा राजा मोहं गच्छति। प्रभाते राम आगत्य पृच्छति—मातः ! किमेतद् इति। तदा सा यथा-वृत्तं सर्वं निगदति।

रामोऽपि पितृ-भक्त इति पितुः प्रतिज्ञा-हानिं न सहते। सीता-लक्ष्मणाभ्यां च सहितस् त्वरितं वनं प्रतिष्ठते।

(२२—२३) सीता-परित्यागः

अतिकरुणं वर्तते—बहुत ही दया के योग्य घटना है।

वनोद्देशे—वन के भाग में।

कियद्दूरम्—यह द्वितीयान्त है। °दूरात्, °दूरे भी कह सकते हैं।

आसन्ना—निकट।

व्यवसातुम्—आचरितुम्, करने के लिए। 'व्यवसितुम्' अशुद्ध होगा।

त्यक्ता किल—बहुत बुरा हुआ कि आप छोड़ी गई हैं। 'किल' यहां अरुचि अर्थ में आया है। 'वार्तायामरुचौ किल' इति विश्वः। दोबारा 'किल' भी इसी अर्थ में आया है।

मयापि किल गन्तव्यम्—यह भी बुरा है कि मुझे भी जाना है।

चारित्र-गुण-शालिना— चरित्र मेव चारित्रम्। चारित्रस्य गुणैः शालते राजते, तेन, चरित्र के गुणों से शोभायमान (राम) से।

प्रत्यागम्य—होश में आकर।

किम् उपालभ्य—क्या दोष लगा कर।

निगृहीता—दण्ड दी गई।

तुल्याऽन्वया—बराबर के कुल वाली। अन्वय–पुं., कुल, वंश।

अनुगुणा—अनुगता गुणा यस्याः अनुगता गुणान् इति वा। सदृश गुणों वाली, अनुकूल।

भाव-दोषात्—चित्त-विकार के कारण।

वचनीयम्—निन्दा, दोष।

लोक-पालानाम्— दिशाओं के रक्षकों के। यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र यह क्रम से दक्षिण पश्चिम, उत्तर, और पूर्व दिशाओं के रक्षक हैं।

निरङ्कुशः — स्वेच्छा-चारी। निर्गतोऽङ्कुशात्।

चिर-परिचितेति—क्योंकि चिरकाल से परिचित है। इति-शब्द यहाँ हेतु अर्थ में आया है।

आहितम—रखा हुआ। आ √धा–क्त।

आसन्नाऽस्तमयः—आसन्नोऽस्तमयो यस्य, जो छुपने को है।

परिदेवितानि—विलाप।

आत्त-वैरः—आत्तं गृहीतं वैरं येन सः, जिस ने मुझ से वैर लिया। आत्त=आ √दा–क्त।

तिर्यग्-गताः—तिर्यञ्चः, तिर्यग् गतं गमनं येषां ते, टेढ़ा चलने वाले पक्षी।

महा-रथस्य—बड़े भारी योद्धा की। जो अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में कुशल अकेला ही दस हजार धनुर्धारियों के साथ लड़ सकता है, उसे 'महारथ' कहते हैं।

विगाहते—प्रवेश करे।

स-संभ्रमम्—जल्दी से। बहुव्रीहि समास, क्रिया-विशेषण।

जह्नु-तनयाम् — गङ्गा को, जाह्नवी को।

सन्ध्याभिषेक-विधये—सायंकाल स्नान करने के लिए।

मुनि-दारकेभ्यः—तपस्वी-कुमारों से। 'तपस्वियों के कुमारों से' ऐसा अर्थ नहीं है।

शब्दापयिष्ये— बुलाऊंगा; पुकारूंगा। व्याकरण के अनुसार शब्दायिष्ये शब्दयिष्ये

(शब्दयिष्यामि) होगा। पंजाबी—सद्दा देना।

अत्याहितम्—महान् अनिष्ट। महान् अनर्थ।

धर्मेण······शासति—धर्म के अनुसार शासन करते हुए।

अशनि-निपातः—वज्र-पात।

स्वस्ति भवत्यै—तेरा कल्याण हो। 'स्वस्ति' के योग में चतुर्थी है।

उदाहरति—नाम लेती है।

अनुयोक्ष्ये—पूछूंगा। अनु √युज् रुधादि।

चिरन्तन-सखा—पुराना मित्र। व्याकरण के अनुसार 'चिरन्तन-सखः' ऐसा शुद्ध रूप होगा। विद्यार्थियों को इसे ही अपनाना चाहिए।

वीर-प्रसवा—वीरः प्रसवः (=सन्तानः) यस्याः। वीर सन्तान वाली।

आश्रम-पदम्—आश्रम-स्थान।

पाठ-सारः

जनाऽपवाद-भीतो रामो 'राज-धर्मः पालनीयो मर्यादाश् च रक्षणीया इति' प्रियां भार्यां सीतां निष्पापाम् अपि जानन् निर्वासयति, लक्ष्मणं चाऽऽज्ञापयति वनम् इमां नीत्वा परित्यजेति। पुण्य-प्रसन्न-सलिलां भगवतीं भागीरथीम् अवगाहितुकामा जानकीति तां लक्ष्मणस् तद्-अन्तिके परित्यजति। भ्रातुः संदेशं तस्यै दत्त्वा प्रति-संदेशं तत आदाय लक्ष्मणः प्रत्यावर्तते। प्रत्यावृत्ते लक्ष्मणेऽस्तम् इते सूर्ये प्रवृत्ते श्वापद-संचारे घोरे निर्-जने तस्मिन् कानन एकाकिनी जानकी मोहं गच्छति। यदा च गङ्गा-तरङ्गो(ङ्ग-उ)त्थेन शीतेन समीरेण प्रत्यागच्छति तदा, स्वस्याऽग्रतः स्थितं महा-मुनिम् एकं पश्यति पृच्छति च—को भवानिति। स प्रत्याह—सन्ध्या-स्नानाय सुर-सरितम् उपेत्य प्रतिनिवृत्तानां

तापस-कुमाराणाम् एकाकिन्य(नी अ)नाथा काचिद् अबला वने रोदितीति श्रुत्वा त्वरितम् इत आगतोऽस्मि, तद् ब्रूहि का त्वं केन कारणेन च वनम् आगताऽसि ! अहम् अस्मि वाल्मीकिर् मुनिः, तेन पर-पुरुष-शङ्कां परिहरेति । सीता तथाऽऽश्वासिता सर्वं स्वं वृत्तान्तं कथयति, वाल्मीकिश् च योग-चक्षुषा ताम् अनघाम् उपलभ्य स्वम् आश्रमं नयति । सीता च तं दशरथ-सख इति तातं मन्यते, स-क्षेमं चाऽऽश्रमे कालं नयति ।

(२४–२८) दूत-वाक्यम्

नेपथ्ये—पर्दे के पीछे । नेपथ्य नपुंसकलिङ्ग है ।

प्रतिहाराऽधिकृताः— द्वारे नियुक्ताः, द्वार-रक्षा में लगाये हुए । द्वार-पाल ।

धार्तराष्ट्राणाम्—धृतराष्ट्रस्य पुत्राः =धार्तराष्ट्राः । धृतराष्ट्र के पुत्रों का ।

मन्त्र-शालां रचयति—मन्त्र-सभा का प्रबन्ध करता है । अर्थात् उस में आसन आदि को क्रम से लगाता है ।

इत एवाऽभिवर्तते—इधर ही आ रहा है ।

समानीतम्—इकट्ठा कर दिया है ।

अवरोधनम्—अन्तःपुर, रणवास को । प्रायः 'अवरोध' पुंलिङ्ग का प्रयोग देखा जाता है ।

अक्षौहिणी—अक्ष–ऊहिणी, इस अवस्था में वृद्धि होकर यह रूप बना है । सामान्यतः यहाँ गुण प्राप्त था । अक्षौहिणी सेना में २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० प्यादे होते हैं ।

बल—नपुंसकलिङ्ग, सेना ।

गाङ्गेये—गङ्गापुत्र भीष्म के होते हुए । भावलक्षणा सप्तमी ।

स्कन्धावारात्-- शिविरात्=सेना निवेशात्, छावनी से, कैम्प से

दौत्येन--दूत बन कर। दूतस्य भावः दौत्यम्। हेतु में तृतीया।

आः--क्रोध से।

अपध्वंस--दूर हो। √ध्वंस् आत्मनेपदी है, पर इस का अप-पूर्वक प्रयोग परस्मैपद में बहुत देखा जाता है। √ध्वंस् का अर्थ 'नष्ट होना' और 'जाना' दोनों हैं।

प्रत्युत्थास्यति--आदर के लिये उठेगा, सत्कार करेगा।

स मया द्वादश-सुवर्ण-भारेण दण्ड्यः--उस से मुझे बारह माषा सोना जुर्माना लेना होगा। सुवर्ण, स्वर्ण--दोनों शुद्ध रूप हैं। स्वर्ण' में 'व्' का लोप होगया है। मूल में 'सुवर्ण' शब्द ही था (=सुन्दर वर्ण वाला)। इसी लिये चांदी को 'दुर्वर्ण' कहते हैं। उसकी दुर्वर्णता सोने की अपेक्षा से है। °भारेण-यहाँ व्याकरण के अनुसार द्वितीया विभक्ति चाहिये थी।

स्वैरम्--स्वेच्छा से, आराम से। क्रिया-विशेषण है।

संभ्रान्ताः--घबरा गये।

गाङ्गेय-प्रमुखाः--गाङ्गेयः प्रमुखो येषां ते, गङ्गा-पुत्र भीष्म आदि।

धर्मात्मजः--धर्म-पुत्र, युधिष्ठिर।

त्रिदशेन्द्र-सूनुः-- इन्द्र-सुत, अर्जुन। त्रिदश=देवता। त्रिदशानामिन्द्रः त्रिदशेन्द्रः। देवताओं का राजा, इन्द्र।

अनामयम्--नीरोगता, आरोग्य। आमय-पुं०, बीमारी को कहते हैं। प्रायः क्षत्रियों से अनामय शब्द को बोल कर शरीर-स्वास्थ्य पूछने की मर्यादा है ब्राह्मणों से 'कुशल' शब्द का प्रयोग करके। यहां राज्य के विषय में कुशल पूछा गया है।

धर्म्यम्--धर्माद् अनपेतम्, धर्म-युक्त।

दायाद्यम्-- दायादस्य भावः। पिता आदि की संपत्ति में जिन का अधिकार होता है,

उन्हें 'दायाद' कहते हैं, 'दायम् आदत्ते'। इन्हीं को 'अंशहर' भी कहते हैं। 'दायाद्य' (नपुं०) का यहां 'जायदाद' अर्थ है।

गुणेतराः—दोषाः। गुणा इतरे येभ्यः, ते (बहुव्रीहि)। 'गुणेभ्य इतरे' ऐसा विग्रह करने पर तो 'गुणेतरे' ऐसा प्रथमा बहुवचन में रूप होगा।

शरैश्छादिता—बाणों से रोक दी

कैरातम्—किरातस्य इदम्, किरात (जंगली शिकारी) का।

वपुः—शरीर। यह सकारान्त नपुंसक शब्द है।

पशु-पतिः—शिव। पशूनां जीवानां पतिः, भूत-नाथः।

निवात-कवचाः—निवातकवच हिरण्यकशिपु के पौत्र का नाम है। उस की सन्तति को 'निवातकवचाः' कहने लगे। यह दानवों की एक जाति का नाम पड़ गया। 'निवात-कवच' का अवयवार्थ है—जिसका कवच(=नर्म) अभेद्य हो।

गां हरिष्यन्ति हि—निश्चय से पृथिवी छीन लेंगे। 'गो' नाम पृथिवी का है। 'हि' यह निपात अवधारण (निश्चय) अर्थ में आता है और हेतु अर्थ में भी। पहले अर्थ में पंजाबी, हिन्दी 'ही' के समान है।

पार्थः—पृथा-पुत्र। पृथा कुन्ती का दूसरा नाम है। कुन्ती यह नाम तो पिता (कुन्तिभोज) के नाम से है, 'पृथा' उसका अपना नाम है।

परुष-वचन-दक्ष—हे कठोर वचन (बुरा-भला कहने) में (ही) चतुर!

शठ—धूर्त, वञ्चक, ठग।

काक—कौए की तरह क्षुद्र, ढीठ।

केकर—टेढ़ा देखने वाला, टीरा।

पिङ्गल—भूरी आँखों वाला। =पिङ्गलाक्ष।

कथं यास्यति किल केशवः—केशव कैसे जायगा, नहीं जा सकता। यहाँ 'किल' 'संभाव्य' अर्थ में आया है। 'वार्तासंभाव्ययोः किल'।

विश्वरूपमास्थितः—विश्व का रूप धारण करता है। आ-√स्था आश्रय करना, ग्रहण करना। उपसर्ग के कारण धातु सकर्मक हो गया है।

भवतु—हो, अच्छा। भवत्वित्यन्तर-तोषे।

दृष्टम्—समझ में आ गया, जान लिया।

जम्भक—मायिक, छली। जम्भ एक असुर था, उसके सदृश माया में निपुण होने से कृष्ण को दुर्योधन जम्भक नाम से पुकारता है। जम्भ इव जम्भकः। कन् प्रत्ययः।

मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाण-जालैः—मम (मदीयं) कार्मुकम् मत्-कार्मुकम्, मेरा धनुष। तस्य उदरम् मत्कार्मुकोदरम्। तस्मात् विनि:सृतानि बाणानां जालानि (=समूहाः) तैः। मेरे धनुष के बीच में से निकले हुए बाणों के समूहों से।

क्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्—क्षरता क्षतजेन रक्तेन रञ्जितानि सर्वाणि गात्राणि यस्य, तम्। बहते हुए लहू से जिसके सारे अङ्ग रंगे हुए हैं, उसे। √क्षर्—खरना (पंजाबी)। क्षतज—नपुंसकलिङ्ग, लहू।

बाष्परुद्धनयनाः—आंसुओं से रुँधी हुई आँखों वाले। बाष्प—पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग।

परिनिःश्वसन्तः—आहें भरते हुए।

पाठ-सारः

सभाऽऽसीनो दुर्योधनो स्व-मन्त्रिभिर् आकारितैं राजभिश् च कः प्रधान-सेनापतिर् नियुज्यताम् इति विषये यावद् मन्त्रयते तावत् पाण्डव-शिविरात् संधि-प्रस्तावम् आदाय श्रीकृष्णो दूतभावेन संप्राप्तः। दुर्योधनस् तस्य शिष्टजनोचितं

संमानं नाऽकरोत्, पाण्डवानाम् अपि कुशल-क्षेमं यथावद् नाऽपृच्छत्।

भवान् इदानीं पाण्डवानां दायाद्यं विभजताम्, बन्धु-वच् च तेषु वर्त्ततां, कुल-नाशं च परिहरताम्, इति श्रीकृष्णेन विज्ञापितो दुर्योधनः सर्वथाऽपि हेय-बुद्ध्याऽऽह—पाण्डवा देवाऽऽत्मजाः सन्ति, न तैः सहाऽस्माकं बन्धुभावः संभवति, तथा सति कथं ते दायाद्यम् अर्हन्ति।

तदा श्रीकृष्णेनाऽर्जुनस्य वीर-कर्माणि संकीर्त्योक्तम्—यदि स्वयं न किञ्चिद् दास्यसि तदा ते समस्ताम् अपि महीं बलाद् हरिष्यन्ति। इत्युक्त्वा गन्तुं प्रवृत्तं श्रीकृष्णं दुर्योधनः संयन्तुम् इच्छति, स्व-भ्रातॄन् समागत-राजमण्डलं च संबोध्याऽऽदिशति कृष्णं संयच्छतेति। भगवांस् तु विश्व-रूपम् आस्थितः स्व-माययेति तस्य सर्वोऽपि यत्नो विफलो भवति।

(२९–३२) ध्रुव-चरितम्

लालयन्—'प्यार करता हुआ', पुचकारता हुआ। √लड् भ्वादि, परस्मैपद से णिच् करके शतृप्रत्ययान्त रूप है। ड-लयोर् अभेदः।

राज्ञः संश्रवे—राजा की सुनाई में।

सेर्ष्यम्—ईर्ष्या सहित। ईर्ष्या= अक्षमा, न सहना।

जगाद—कहा। गद् भ्वादि परस्मैपद लिट्।

वेत्थ—तू जानता है। 'वेत्सि' के स्थान पर दूसरा रूप।

चेत्—यदि। यह वाक्य के आदि में नहीं आ सकता। पूर्व वाक्य में 'चेत्' होने पर उत्तर वाक्य में 'तर्हि, तदा' का प्रयोग करना शिष्ट-व्यवहार के विरुद्ध है।

हित्वा—छोड़ कर । √हा—जुहोत्यादि, छोड़ना ।

वाक्यस्य स्मरन्ती—वाक्य का (वाक्य की कठोरता का) स्मरण करती हुई । वाक्य के स्मरणमात्र में द्वितीया भी प्रयुक्त हो सकती है ।

मा स्म चिन्तयः—चिन्तन मत कर । चिन्तयः—लङ् मध्यम-पुरुष, एकवचन का रूप है । 'मा' आने से आदि के 'अ' का लोप हुआ है । 'मा' के साथ 'स्म' आने से लुङ् के स्थान पर लङ् का प्रयोग भी हो सका है ।

भार्येति मन्यते—मुझे पालने-पोसने योग्य भाररूप स्त्री समझता है ।

सुरुच्यां तु सुरुचिः—पर सुरुचि में उस की रुचि (=प्रीति) है । अर्थात् वह उसकी प्रिया (=प्यारी पत्नी) है ।

निषेव्य—सेवित्वा । 'नि' के कारण स् को ष् हुआ ।

भूरि-दक्षिणैः—भूरयो दक्षिणा येषु तैः । बड़ी दक्षिणा वाले (यज्ञों) से । भूरिशब्द अव्यय नहीं है ।

दुःख-च्छिदम्—दुःखं छिनत्ति तम्, दुःख नाश करने वाले को ।

लोकानुग्रहतत्परः—तत् परं यस्य स तत्परः । लोकस्यानुग्रहः लोकानुग्रहः । लोकानुग्रहे तत्परः, लोक की सहायता करने में लगा हुआ । 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः ।

वनं प्रस्थितः—वन को चल पड़े हो । √स्था भ्वादि परस्मैपद—ठहरना, प्र उपसर्ग के कारण अर्थ बदल गया । अनुक्त 'उद्दिश्य' का कर्म होने से 'वन' से द्वितीया हुई ।

गृहान्—घर को । गृह नपुंसकलिङ्ग है, पर बहुवचन में इसका पुंलिङ्ग में भी प्रयोग हो सकता है । ऐसा होने पर एकवचनान्त गृह शब्द का अर्थ एक घर भी हो सकता है ।

मार्गयन्तः—ढूंढते हुए। √मार्ग् चुरादि धातु है। √मृग् भी चुरादि है, पर वह नित्य आत्मनेपदी है।

स्पर्धाम्—संघर्ष को।

स च भगवान् इत्यादि—'सः' से यहाँ 'अभीष्टसाधकः' इस की ओर संकेत है, नकि मार्ग की ओर।

त्रि-कालम्—त्रयः कालाः समाहृताः (द्विगु)। तीन काल। अत्यन्त संयोग में द्वितीया।

पीताम्बरम्—पीते अम्बरे (द्वि-वचन) यस्य स पीताम्बरः, तम् (पीले वस्त्रों वाले भगवान् विष्णु को)। प्रायः 'पीतानि अम्बराणि यस्य स पीताम्बरः' ऐसा बहुवचन से विग्रह किया जाता है, सो ठीक नहीं।

शङ्खचक्रगदापद्मधरम्—शङ्खश्च चक्रं च गदा च पद्मं च, इति शङ्खचक्रगदापद्मम् (समाहार द्वन्द्व), तस्य धरम्। 'तद् धारयति' नहीं कह सकते। षष्ठीसमास है, उपपदसमास नहीं।

सज्जते—लग जाता है। इस का परस्मैपदी धातुओं में पाठ है। पर भाष्यकार के प्रयोग-प्रमाण से आत्मनेपद में भी प्रयोग दोषरहित है।

पञ्च-वर्षः—पञ्च वर्षाणि वयः-प्रमाणमस्य इति, तद्धितार्थ में द्विगुसमास है। चेतन पदार्थ के लिये पञ्चवर्षीय, पाञ्चवर्षिक, पञ्चवार्षिक आदि प्रयोग अशुद्ध हैं।

रात्रिन्दिवम्—रात्रौ च दिवा च (द्वन्द्व), रात दिन।

उपोष्य—उपवास करके।

व्युत्थितः—समाधि से उठा हुआ।

लोचनाभ्यां पिबन्निव—आँखों से चाह से देखता हुआ। संस्कृत में ऐसा कहने का ढंग है।

तुष्टाव—स्तुति की। √स्तु—लिट्।

अभिष्टुतः=अभि-स्तुतः। स्तुति किया हुआ।

दावाऽग्निम्—जंगल की आग को। 'दव' और 'दाव' के दो अर्थ हैं—जंगल और जंगल की आग।

उपरिष्टात्— ऊपर। इस के योग में षष्ठी विभक्ति होती है, पञ्चमी नहीं।

पाठ-सारः

उत्तानपाद-नाम्नो राज्ञः सुनीतिः सुरुचिश्चेति द्वे स्त्रियौ आस्ताम्। तयोः कनीयसी सुरुचिस् तस्याऽधिकं प्रियाऽभवत्। एकदा नृपः सुरुचेर् भवनं गतस् तस्याः पुत्रम् अङ्के कृत्वा लालयति स्म। अत्राऽन्तरे सुनीति-सुतो ध्रुवोऽपि तत्राऽऽगत्य पितुर् अङ्के स्थातुम् ऐच्छत, परं राजा सुरुचि-भयात् तम् अङ्के नाऽकरोत्। तदा तत्र स्थितया सुरुच्या च परुषतर-वाक्यैर् ध्रुव उक्तः। रे! यदि त्वं राजाङ्के स्थातुम इच्छसि तदा मम गर्भे जन्म गृहाण।

इति श्रुत्वा दुःखितो ध्रुवो रुदन् मातुः सकाशम् आगतः। मात्रा च परिष्वज्योक्तः पुत्र! भगवन्तम् आराधय, स एव समर्थः सर्वा आपदो हन्तुम्। इत्याकर्ण्य ध्रुवो वनं गत्वा भगवद्-भक्ति-परोऽभवत्। अत्राऽन्तरे तत्राऽऽगतेन नारदर्षिणा समुपदिष्टो ध्रुवः प्राणायामम् आतिष्ठन्, यमान् नियमांश् च सेवमानो, नित्यं भगवन्तं विष्णुं मनसा ध्यायति। एवं चिरं ध्यातवतोऽस्य पुरतो भगवान् आविर्भवति। मनो-वाञ्छितं च वरम् अस्मै दत्त्वाऽन्तर्धत्ते।

ततो ध्रुवः पूर्ण-मनोरथो भूत्वा स्व-नगरं गत्वा पित्रा दत्तं राज्यं प्राप्नोत्। सुरुचिश् च वने मृतं निज-पुत्रं ज्ञात्वा स्वयम् अपि प्राणान् अत्यजत्। उत्तानपादस् तु तपसे वनं जगाम।

(३३–३४) सुभाषित-प्रशंसा

गीर्वाण-भारती— देववाणी = संस्कृत ।

अश्मतां गता--पत्थर बन गई । अश्मन् पुंलिङ्ग पत्थर ।

स्वादुः = स्वादुतरः अधिक स्वादु । तर(प्) प्रत्यय स्वार्थ में ही होता है ।

सुभाषितमयैः—सुभाषितरूपैः । विकारे मयट् । सुन्दर भाषण से बने हुए ।

प्रस्ताव-यज्ञेषु--संभाषणरूप यज्ञों में, जहां प्रत्येक कुछ न कुछ कहता है ।

(३५) मुग्धस्य पशु-पालकस्य

मुग्धस्य—मूढस्य = अबोध (पशु-पाल) का ।

मित्रत्वं समाश्रित्य--मित्रता का आश्रय लेकर, मित्रता का बहाना बना कर ।

तस्य अमिलन्--उस से मिले । √मिल् तुदादि परस्मैपद अकर्मक है, अतः 'तस्य' षष्ठी हुई, द्वितीया नहीं ।

आढ्यस्य—धनवान् की ।

प्रतिश्रुता—वाचा दत्ता = वचन से दे दी गई ।

दिवसैर्गतैः—कुछ दिनों के पीछे ।

ननन्द--प्रसन्न हुआ । √नन्द् भ्वादि, परस्मैपद, लिट् ।

प्रारोदीत्--रोने लगा ।

अदत्त--दी, उत्पन्न की (हंसी) ।

संक्रान्त-जडिमा — संक्रान्तो जडिमा (पुंलिङ्ग) यस्मिन् । जिस में मूर्खता आ गई है ।

पाठ-सारः

केचिद् धूर्ताः 'त्वत्कृतेऽस्माभिर आढ्यस्य सुता याचिता तेन च प्रतिश्रुता' इत्युक्त्वा कस्यचिद् धनवतो मुग्धस्य पशु-पालकस्य सकाशाद् धनम् अगृह्णन् । दिवसैर गतैः 'विवाहस्तव संपन्नः, इति, दिनैश्च 'पुत्रो जातस् तव, इत्यवदन् । पशुपाल-कस् तुष्टः सर्वं समर्पितवान् । 'पुत्रं द्रष्टुम् इच्छामि' इति तेन पृष्टास् ते पलायन्त । एवं धूर्तैः स वञ्चितः ।

(३६–३७) भरत-शपथाः

प्रकरण—भरत जब मातुल-गृह से अयोध्या लौटता है तो क्या देखता है कि श्रीराम को निर्वासित किया गया है और वे सीता और लक्ष्मण को संग लिये वन को प्रस्थान कर चुके हैं । वह अपनी माता कैकेयी से मिलता है जो उसे बड़ी उत्सुकता से यह बतलाती है कि पुत्र ! इस राज्य को मैंने तुम्हारे लिये प्राप्त किया है । अब तुम इसे निष्कण्टक भोगो । महाराज दशरथ से मैंने पूर्वकाल में दिये हुए दो वर माँगे—राम को चौदह वर्ष का बनवास और भरत के लिये अयोध्या का राज्य । यह सुनते ही भरत भौंचक सा रह गया, वह पृथिवी पर गिर पड़ा और बेसुध हो गया । सुधि प्राप्त करने पर उसने अपनी माता को अत्यन्त कठोर शब्दों से धिक्कारा । धर्म की आज्ञा नहीं थी, नहीं तो वह उसे जान से मार देता । तत्पश्चात् वह माता कौसल्या को मिलने जाता है । दुःखिनी कौसल्या भरत को बहुत बुरा भला कहती है । उस समय भरत अपने आप को निर्दोष बतलाने के लिये अनेक सौगन्दें लेता है । ये सौगन्दें क्या हैं—आर्यसंस्कृति का सजीव चित्र हैं । यहां कुछ एक सौगन्दों को संगृहीत किया गया है ।

कैकेयीम्—केकयस्याऽपत्यं स्त्री कैकेयी, केकय राजा की पुत्री को ।

अधिक्षिप्य—निन्दा कर के ।

कौसल्याम्—कोसलस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कौसल्या, कोसल देश के राजा कोसल की लड़की को । 'कौशल्या' तालव्य 'श' से पाठ अशुद्ध है ।

अ-कल्मषम्—निष्पाप को ।

कृता—संस्कृता, शुद्ध ।

शास्त्राऽनुगा—शास्त्र के अनुसार चलने वाली ।

सत्य-सन्धः—सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य (बहुव्रीहि), सच्ची प्रतिज्ञा वाला ।

बलि-षड्-भागम्—षष्ठो भागः =षड्-भागः । समास के पूर्वपद के रूप में संख्या-वाची शब्द पूरण-प्रत्ययान्तों का अर्थ दे देते हैं (जैसे शतांशः सौवां अंश) । बलेः षड्-भागः—बलिषड्भागः (कर का छठा भाग) । यहां बलेः षष्ठो भागः—ऐसा विग्रह नहीं कर सकते, कारण कि त्रिपद तत्पुरुष नहीं होता ।

द्रुह्येत—द्रोह करे । हानि पहुंचाने की सोचे । यहाँ छन्द के कारण आत्मनेपद किया गया है ।

मित्रे— मित्र में चतुर्थी चाहिये थी । सप्तमी का प्रयोग आर्ष है ।

विवृणोतु—प्रकट करदे ।

समुपोढे—उपस्थित होने पर, निकट आने पर । सम्-उप-√वह्—क्त ।

प्रतिपद्यताम्—प्राप्त होवे । √पद् दिवादि आत्मनेपद ।

पलायमानः — भागता हुआ । परा √अय् भ्वादि, आत्मनेपद, जाना । र् को ल् हुआ है ।

विप्रलुप्यन्ताम्—√लुप् तुदादि, उभयपदी, छेदना । वि और प्र उपसर्ग हैं । छीने जायें ।

उपरुणत्सि—रोकते हो । √रुध् , रुधादि, उभयपदी ।

तथ्याऽतथ्यम्—तथ्यं चाऽतथ्यं च=तथ्यातथ्यम् (अथवा तथ्यातथ्ये द्विवचन) सत्य और झूठ ।

अजानन्त्या — अजानत्या के स्थान पर आर्ष प्रयोग । न जानती हुई ने ।

अनघे—(संबोधन) हे निष्पापे ! अघ (नपुंसकलिङ्ग)=दुःख, पाप और व्यसन ।

भूयात्—आशीर्लिङ् । 'भवेत्' =विधिलिङ् के अर्थ में ।

मा···द्राक्षीत्— मत देखे । अद्राक्षीत्—√दृश् लुङ् प्रथम-पुरुष, एकवचन । 'मा' आने से 'अ' का लोप हो जाता है ।

समग्रम् आयुः—सारी आयु। 'शतायुर् वै पुरुषः पुरुष की पूर्ण आयु १०० वर्ष है' ऐसी श्रुति है। अथवा जितनी आयु कर्मानुसार नियत है। (उसे भोगे विना)।

अटताम्—भ्राम्यतु = घूमे। √अट् परस्मैपदी है। आत्मनेपद आर्ष है।

चीर-संवृतः—वल्कल पहने हुए। 'चीरं वार्क्षी त्वक्'—इति क्षीरस्वामी। संवृतः = ढांपा हुआ।

पर-स्त्री-धर्षणे—परस्य स्त्री पर-स्त्री (दूसरे की स्त्री=पत्नी)। तस्या धर्षणे = वलात्कारे, परामर्शे = दूसरे की स्त्री के साथ अत्याचार में।

शापैः—शपथैः। सौगन्दों से।

परिष्वज्य—आलिङ्गन कर।

भ्रातृ-वत्सलम्— भ्रातुर्वत्सलं प्रियम्। भाई के प्यारे को।

मा रोदीः—मत रो। √रुद् का लुङ्।

पाठ-सारः

रामे वनं गते राज्ञि दशरथे च मृत्युं प्राप्ते, भरतो मातुल-गृहाद् अयोध्यां प्राप्य विदित-वृत्तान्तो यदा कौसल्या-मन्दिरं प्राप्तस् तदा समागतं भरतं विलोक्य राम-जननी मुक्त-कण्ठं रुदती, भरतम् एव सर्वस्य विनाशस्य हेतुं कीर्तयन्ती, साक्षेपं च निन्दन्ती, विललाप। तथाविधं स्वस्याऽपवाद-रूपं तस्या वाक्य-जातम् उपश्रुत्य कैकेयीपुत्रो भरतो बहुविधैर् विश्वास-जनकैः शपथैर् आत्मानं सर्वथाऽपि निर्दोषम् उपपादयत्ये(ति ए)भिः पद्यैः। प्रसङ्गाद् इमे शपथा आर्याणां पुण्य-पाप-व्यवस्थां केतयन्ति संस्कृतिं च परिचाययन्ति।

---

(३८) अर्जुन-विषादः

प्रकरण--महाभारत के युद्ध में जब दोनों दलों की सेनायें ए" दूसरे के सामने खड़ी हो जाती हैं और युद्ध छिड़ने को है, तो वीर अर्जुन शत्रु-दल पर दृष्टि डालता है। जब वह देखता है कि मुझे अपने पितामह भीष्म, अपने आचार्य द्रोण, अपने मामा शल्य, तथा दुर्योधन आदि अपने भाइयों और भाइयों के पुत्रों के साथ लड़ना होगा और सोचता है कि इन्हें मार कर ही विजय प्राप्त करनी होगी, तो अपने धीर वीर स्वभाव को छोड़ गहरे शोक में निमग्न हो जाता है। वह लौकिक सुख-सामग्री व ऐश्वर्य के लिये तो क्या, तीन लोकों के राज्य के लिये भी इन की हत्या करने को तैयार नहीं है। वह भावी वंश-विध्वंस को सोचते ही कांप उठता है। उस के हाथ से गाण्डीव धनुष गिर जाता है और वह युद्ध करने से इनकार कर देता है। अर्जुन की इस शोक की अवस्था का गीता के प्रारम्भ में वर्णन किया गया है। वहीं से ये श्लोक संगृहीत किये गये हैं।

युयुत्सुम्=योद्धुमिच्छुम् युद्ध करना चाहते हुए को

काङ्क्षितम्–चाहा हुआ। काङ्क्षितं च काङ्क्षिताश्च काङ्क्षितानि चेति काङ्क्षितम्। 'नपुंसकम-नपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्' इस सूत्र से नपुंसक एकशेष हुआ और विकल्प से एक-वचन भी।

प्राणांस् त्यक्त्वा—प्राणों को छोड़ कर, प्राणों की पर्वाह न करके त्यक्त्वा=अनादृत्य।

मही-कृते--मह्याः कृते। पृथिवी के लिए।

आततायिनः—आततं यथा स्यात् तथा अयितुं गन्तुं शीलं येषां ते। अत्यन्त हिंसाशील, महान् उपद्रव करने वाले। शास्त्र में छः पुरुषों को आततायी कहा गया है--१. आग लगाने

वाला, २. विष देने वाला, ३. हर समय हाथ में शस्त्र लिये हुए, ४. चोर-डाकू, ५. भूमि छीनने वाला, ६. पर-स्त्री को हरने वाला।
अनियतम्—अनन्त काल तक।
बत—अव्यय, शोक है।
व्यवसिताः—तैयार। कर्त्तरि क्त।

पाठ-सारः

महाभारत-युद्धे समुपस्थितयोर् उभयतः कौरव-पाण्डव-सेनयोः स्व-रथम् आरूढोऽर्जुनोऽग्रतः स्थितान् भीष्म-द्रोण-प्रभृतीन् शिष्टान्, अन्यान् अपि च बान्धवान् दृष्ट्वा, करुणया पूर्णः शोकाऽऽतुरः सारथिं श्रीकृष्णं प्रत्याह—

हे जनार्दन! समुपस्थितान् एतान् गुरून् ज्ञातींश् चैतस्मिन् रणे हत्वा नाऽहं राज्यं कर्तुम् इच्छामि, न चाऽपि राज्य-सुखानि भोक्तुम्। यतो हतेषु एतेषु महत् पापं भविष्यति। यस्य प्रायश्चित्तम् अपि अस्मिन् जन्मनि जन्माऽन्तरे वा न भवितुम् अर्हति।

यद्यपि लोभेन नष्ट-बुद्धयः कुरवः कुल-क्षय-कृतान् दोषान् न पश्यन्ति, अहं तु पश्यामि। कुल-क्षये कुल-धर्मा नश्यन्ति कुल-स्त्रियश् च दुष्यन्ति। एवं सति निर्मर्यादं जगद् भवति। सर्वत्राऽपि वर्ण-संकरो जायते। धर्माऽधर्म-व्यवस्था च लुप्यते। अनार्यता प्रभवति, आर्यता च न्यग्भवति इत्यादयो बहवो दोषाः समुद्भवन्तीति नाऽहं योत्स्ये।

---

(३९) हेमन्त-वर्णनम्

प्रकरण:—दण्डकावन में पञ्चवटी के समीप गोदावरी के तट पर रहते हुए श्रीराम को जब कुछ समय हो गया तो शरद् ऋतु के पश्चात् हेमन्त ऋतु आई। रामायण के अरण्यकाण्ड के सोलहवें अध्याय में भगवान् वाल्मीकि ने इस का विस्तार से वर्णन किया है। उसी अमर-वाणी से कुछ पद्य यहां संगृहीत किये गये हैं।

शरद्-व्यपाये—शरद् ऋतु का अतिक्रम होने पर, शरद् के व्यतीत होने पर।

प्रह्व:—नम्र, झुका हुआ।

हिमकोशाढ्यः—हिमकोशैर् घनी-भूत-हिमसमूहैर् आढ्यः प्रचुरः। कठिन हुई-हुई बर्फ के ढेर से भरा हुआ।

सांप्रतं हिमवान् गिरिर्यथार्थ-नामा हिमवान्—(भवति) इस समय हिमवान् = हिमालय पर्वत सचमुच हिमवान्=बहुत बर्फ वाला है। यथार्थं नाम यस्य स यथार्थनामा। यथार्थम्= अर्थमनतिक्रम्य (अव्ययी भाव)।

मृदु-सूर्याः—मृदुः सूर्यो यत्र। जिन में हल्की सी धूप होती है।

स-नीहाराः—नीहारेण सह वर्त-मानाः (बहुव्रीहि) धुँध वाले।

पटु-शीताः—पटु तीव्रं शीतं शैत्यं यत्र, जिन में कड़ा जाड़ा पड़ता है।

हिम-ध्वस्ताः—बर्फ के कारण उजड़े हुए। यहां कमल आदियों के उजड़ जाने से दिनों को ही 'उजड़े हुए' कह दिया गया है।

रवि-संक्रान्त-सौभाग्यः— रवौ संक्रान्तं सौभाग्यं सुभगत्वं यस्य। जिस का सुहावनापन (शीतल और दर्शनयोग्य होना) सूर्य में चला गया है। सुभगस्य भावः सौभाग्यम्।

निःश्वासान्धः——निःश्वासेन अन्धः (=मलिनः)। फूँक से मैला हुआ (जिस में कुछ नहीं दीखता)।

आदर्शः——पुंलिङ्ग आरसी, मुँह देखने का शीशा।

काले——प्रातःकाले।

समुपासीनाः——(जल के) समीप बैठे हुए।

अवगाहन्ति——प्रवेश करते हैं। √गाह् भ्वादि० आत्मनेपदी है। परस्मैपद में आर्ष प्रयोग समझना चाहिये।

अ-प्रगल्भाः——भीरु, डरपोक।

आहवम्——युद्ध को। आहव पुंलिङ्ग है।

रुत-विज्ञेय-सारसाः—— रुतैर्विज्ञेयाः = रुतविज्ञेयाः (तृतीया तत्पुरुष) रुतविज्ञेयाः सारसा यत्र (वहुव्रीहि)। जहां शब्द से सारसों का अनुमान होता है।

वाष्प-संछन्न-सलिलाः—— वाष्पेण धूमेन संछन्नम् आच्छादितम् वाष्पसंछन्नम् (तृतीया तत्पुरुष) वाष्पसंछन्नं सलिलं यासां ताः ('सरितः' वहुव्रीहि)। धूंए से ढके हुए जल वालीं (नदियां)।

---

(४०) कर्म-विपाकः

प्रकरण—महाभारत के शान्तिपर्व के १८१ वें अध्याय में युधिष्ठिर महाराज भीष्मपितामह से कर्मफल के विषय में कुछ एक प्रश्न करते हैं। वे पूछते हैं कि यदि यहां किये गये दान-अग्निहोत्र आदि से मनुष्य का भविष्य बनता हो और उन से उसकी बुद्धि संस्कृत होती हो तो मैं इन्हें करूँ। इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानराशि वृद्ध-पितामह ने जो कहा वही यहाँ संक्षेप से दिया गया है।

यद्यस्ति——यदि रहता है (कालान्तरं तिष्ठति, फलदं भवति)।

निविशते——लग जाता है। √विश् परस्मैपदी है, पर 'नि' उपसर्ग

लगने से इस का प्रयोग आत्मनेपद में होता है।

विधीयते=अधिक्रियते, अधिकारी बनाया जाता है।

आत्मना—बुद्धि से। 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्मच' इत्यमरः।

मृतेभ्यः प्रमृतं यान्ति=मरणात् मरणान्तरं यान्ति, मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, बार-बार मरते हैं।

व्याल-कुञ्जर-दुर्गेषु—दुष्ट हाथियों से दुर्गम (स्थानों) में।

हस्तावापेन—हथकड़ी के साथ।

प्रियदेवातिथेयाः—प्रियं देवा आतिथेयं च येषां ते, जिन्हें देवता और आतिथ्य (=अतिथि-सत्कार) प्यारा है। आतिथेय=आतिथ्य। व्याकरण के अनुसार आतिथेय का अर्थ होना चाहिये—अतिथिषु साधुः=अतिथियों के प्रति अच्छा व्यवहार करने वाला।

आत्मवताम्—जिन्होंने अपने मन को वश में किया हुआ है।

आस्थिताः—आश्रिताः। आश्रित हैं।

हस्त-दक्षिणम् (मार्गम्)—हस्तेनोपलक्षितं तत्कर्तव्यं दानादि, तेन दक्षिणमनुकूलं हस्त-दक्षिणम्। हाथ से किये जाने वाले दानादि कर्म के कारण अनुकूल मार्ग।

पुलाकाः—पूति-धान्यानि। न गलने वाला अन्न।

पुत्तिकाः=मच्छर।

विधानम्—पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म।

छायेवाऽनुविधीयते—छाया की तरह पीछा करता है।

एकतरः—द्वयोरेकः एकतरः। अकेला।

विधान-परिरक्षितम्—अदृष्ट (भाग्य) से सुरक्षित रखा हुआ।

भूत-ग्रामम्—प्राणिसमूह को। प्राणिमात्र को। ग्राम=समूह।

समुन्नम्—गीला। √उन्द् रुधादि, गीला करना।

शकुनानाम्......इस श्लोक का भाव यह है कि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म में लीन हो जाता है और पुनः शरीर धारण नहीं करता। अनन्त ब्रह्म में लीन होने से उस का पता नहीं चलता कि कहाँ गया। जिस प्रकार आकाश में उड़ते हुए पक्षियों और समुद्रजल में बहने वाले मत्स्यों का पता नहीं चलता कि किधर जा रहे हैं और कहां पहुँच जाते हैं।

पाठ-सारः

युधिष्ठिरेण दान-यज्ञ-तपः-गुरुशुश्रूषाऽऽदिभिः कष्ट-साध्यैः कर्मभिर् मानवः किम् अपूर्वं फलं प्राप्नोतीति पृष्टो भीष्मः कर्मणां शुभाऽशुभभेदेन द्वैविध्यम् अदर्शयत्--यो यथा करोति सोऽवश्यम् एव स्व-कृतस्य शुभाऽशुभ-कर्मणः फलं यथा-कालं प्राप्नोति। तस्य कर्म वृथा न भवति। भूमौ पतितेभ्यो बीजेभ्यो यथा प्रावृट-कालेऽङ्कुरा जायन्ते, तथा कर्मणां विषयेऽपि। अतः शुभ-फलाऽऽकाङ्क्षिभिः सदा शुभान्ये (नि ए) व शास्त्रोक्तानि हितानि कर्माणि कर्तव्यानि।

---

(४१) अराजकता-हानयः

प्रकरण--महाभारत के शान्तिपर्व में महाराज युधिष्ठिर भीष्मपितामह से पूछते हैं कि क्या कारण है कि ब्राह्मण राजा को देवता बतलाते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में भीष्म-पितामह राजा की महिमा और राजा के न होने से जो हानियां होती हैं उन्हें विस्तार से कहते हैं। इसी में युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर मिल जाता है।

अराजकता--अविद्यमानो राजाऽत्र इति अराजा (देशः), स एव अराजकः (स्वार्थे कन् अथवा समासान्त कप् प्रत्यय)। तस्य भावः-अराजकता।

अन्धे तमसि—अन्धा करने वाले (अति घने) अन्धकार में।

परिग्रहान्—माल, असबाब, धन।

व्यायच्छमानान्--(रक्षा करने का) उद्यम करते हुओं को। वि-आ √यम् भ्वादि, परस्मैपदी।

संपरिग्रहः---स्वीकार।

दाराः---धर्म-पत्नी। 'दार' शब्द पुंलिङ्ग है और नित्य बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है।

विष्वक्—(अव्यय) चारों ओर से।

ममत्वम्—यह मेरा है, इस भाव को।

दस्युसात्—डाकुओं के अधीन।

पतेयुः—जाएं। √पत् का अर्थ 'जाना' है। प्रकरण-वश अथवा उपसर्ग-योग से—नीचे जाना (गिरना) आदि अर्थ हो जाते हैं।

वणिक्-पथः—वाणिज्य, व्यापार।

योनि-दोषः—व्यभिचार-दोष (पाप, निन्दा)।

त्रयी—ऋक्, यजुः, साम-तीनों वेद। भाव यह कि वेदप्रतिपादित कर्मकाण्ड लुप्त हो जाय।

संप्रवर्तेरन्--वीर्य सिंचन करें।

गर्गराः--दही बिलोने की मटकियां। संस्कृत में 'मन्थनी' भी कहते हैं।

घोषाः—आभीर-पल्लयः, अहीरों की झोंपड़ियां (जहां पशुओं का शब्द नित्य होता रहता है)।

संवत्सर-सत्राणि—वर्षभर रहने वाले यज्ञ।

तिष्ठेयुः— अनुतिष्ठेयुः = कर सकें।

अकुतोभयाः—नास्ति कुतोऽपि भयं येषां ते। तत्पुरुष (मयूरव्यंसकादि)। यह बहुव्रीहि नहीं

है। अर्थ--जिन्हें कहीं से भी भय नहीं है, निर्भय।

विद्या-स्नाताः—विद्यया स्नाताः, जिन्होंने विद्याध्ययन समाप्त कर के स्नान किया है, पर ब्रह्मचर्य-व्रत परिसमाप्त नहीं किया।

व्रत-स्नाताः--व्रतेन स्नाताः, जिन्होंने व्रत पूर्ण करके स्नान किया है अभी विद्याऽध्ययन समाप्त नहीं किया।

हत-विप्रहतः—क्षत-विक्षत।

हस्ताद् हस्तं परिमुषेत्—हाथ में पड़ी हुई वस्तु को भी छीन ले। हस्त=हस्त-स्थित। √मुष् क्र्यादि है, यहां तुदादि मान कर इस का आर्ष प्रयोग है।

सर्व-सेतवः—सर्वे च ते सेतवः (कर्मधारय) सब मर्यादाएं।

विद्रवेत्--भाग जाए। √द्रु भ्वादि, जाना।

अ-नयाः—कु-नीतियां। यहां नञ् निन्दा में है।

पाठ-सारः

इह दर्शितं—यद् राज्ञा विना न लोके मर्यादा तिष्ठति, न धर्म-मर्यादा, न वर्ण-मर्यादा, न चाऽप्याश्रम-मर्यादा। चौराणां लुण्ठकानां स्वेच्छाचारो वृद्धिं याति, सर्वाश्च प्रजा अत्यन्तं भीता योग-क्षेम-विवर्जिता महद् दुःखमनुभवन्ति। राजा हि राष्ट्रं रक्षति, अन्यथा मत्स्य-न्यायः प्रवर्तते।

(४२—४४) प्रह्लाद-चरितम्

प्रकरण—मैत्रेय ऋषि ने भगवान् पराशर से दैत्य-श्रेष्ठ विष्णु-भक्त प्रह्लाद के चरित सुनने की इच्छा प्रकट की, क्योंकि भगवान् पराशर ने उस से प्रह्लाद की महिमा का कुछ कीर्तन पहले किया था और बतलाया था कि

उसे अग्नि न जला सकी, शस्त्र न काट सके, और पत्थरों की बौछार न मार सकी थी। ऐसा सुन कर मैत्रेय को स्वभावतः कुतूहल हुआ और उसने भगवान् पराशर से प्रार्थना की कि आप कृपया महात्मा प्रह्लाद के चरित को विस्तार से कहें। यह चरित विष्णुपुराण के प्रथम अंश के १७–२० अध्यायों में वर्णन किया गया है। उसी का संक्षेप यहां दिया गया है।

उदार-चरितस्य—उदारं चरितं यस्य सः। उदार—महान् और दान-शील को कहते हैं। यहां 'महान्' अर्थ है। चरित (नपुंसकलिङ्ग)=कर्म। विना 'आ' उपसर्ग के भी √चर् का अर्थ 'करना' होता है।

महात्मनः—महान् मन वाले का अथवा महान् यत्न वाले का। यहां 'आत्मा' का अर्थ मन अथवा यत्न है।

पानासक्तम्— पाने= सुरापाने आसक्तम्=मद्य पीने में आसक्त (लगे हुए) को।

महात्मानम्—बड़े शरीर वाले को। यहां आत्मा=शरीर, जैसे 'आध्यात्मिक' (दुःख) शब्द में है।

उपासांचक्रिरे—सेवा करते थे, चरणों में बैठते थे।

महा-भागः—बड़-भागी। विद्वानों ने 'महा-भाग' का लक्षण इस प्रकार किया है—

आरभ्योत्पत्तिम् आ मृत्योः,
कलङ्को यस्य नो भवेत्।
भवेच् चाऽनुपमा कीर्तिर्
महा-भागः स उच्यते॥

विश्रुतः—विशेषेण श्रुतः (प्रादि-तत्पुरुष), प्रसिद्ध।

अमितौजसम्—अमितम् ओजो यस्य तम्, अनन्त बल वाले को।

कालेनैतावता—अपवर्गे तृतीया, इतने काल में। 'ते' यहां 'त्वया' के स्थान में प्रयुक्त हुआ है।

अनादिमध्यान्तम्— आदिश् च मध्यश् च अन्तश् च आदिमध्यान्ताः (द्वन्द्व), अविद्यमाना आदिमध्यान्ता यस्य, तम्—जिस का न आदि है, न मध्य और न अन्त, उस को।

अच्युतम्—विष्णु को। अ-च्युत= जो धर्म वा मर्यादा से कभी गिरता नहीं।

स्फुरिताधरपल्लवः— अधरौ पल्लवाविव अधरपल्लवौ (कोंपल जैसे होंठ), स्फुरितौ अधरपल्लवौ यस्य (बहुव्रीहि), जिस के कोंपल-सदृश (कोमल और रक्त) होंठ फड़क रहे हैं, वह।

ब्रह्मबन्धो—हे मिथ्या-ब्राह्मण! 'ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे' इत्यमरः। ब्रह्माणो ब्राह्मणा बन्धवोऽस्य, न तु स्वयं ब्रह्मा (विहितस्याऽनिषेवणात्)।

शास्ता—शासिता (व्याकरणानुसार) शिक्षक।

शिष्यते—सिखाया जाता है। √शास् यक् कर्मणि।

प्रसभम्—(अव्यय), हठपूर्वक।

शब्दगोचरः— शब्दस्य गोचरः (षष्ठी-तत्पुरुष) शब्द का विषय। 'गोचर' शब्द नित्य पुंलिङ्ग है। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' इस नियम से 'शब्दगोचर' पुंलिङ्ग में ही रहेगा, चाहे इस का विशेष्य किसी भी लिङ्ग का क्यों न हो। यहां विशेष्य 'पद' नपुंसकलिङ्ग है। 'पद' नाम स्वरूप का है।

किम्—(अव्यय) क्या (प्रश्न)।

मर्तुकामः—मर्तुं कामोऽस्य (बहुव्रीहि)। तुमुन् के 'म्' का लोप हो जाता है।

किमर्थम्—कोऽर्थोऽस्य (बहुव्रीहि), किस प्रयोजन से।

निष्कास्यताम्—निकाला जाय। √कस्—जाना, भ्वादि, परस्मैपद। निस् √कस्—निकलना। निष् √कस् + णिच्—निकालना।

चराचरम्— जगत्। चरतीति चराचरम्। पचाद्यच्, द्वित्वम्, अभ्यासस्य च आक्। 'चर' भी कह सकते हैं, 'चराचर' भी।

भयानामपहारिणि—भयाऽपहारिणि=भयों को दूर करना स्वभाव है जिस का, उस के होने पर (स्थिते)।

कुहकः, तक्षकः, अन्धकः—सर्प-विशेष हैं।

अतिविषोल्बणाः—अतिशयितं विषम्—अतिविषम् (प्रादि-समास), तेन उल्बणाः=अधिक विष में सामर्थ्य वाले।

न विवेदाऽऽत्मनो गात्रम्—अपने शरीर की सुधि न रही। विवेद—√विद् जानना, लिट्।

अपसर्पत दिग्गजाः—हे ऐरावत आदि दिशाओं के हाथियो! हट जाओ। दैत्येश्वर हिरण्यकशिपु ने पहले हाथियों से कहा था कि इस बालक को मार डालो। जब उन के दाँत टूट गये और वे प्रह्लाद का बाल बांका न कर सके तो हिरण्यकशिपु ने उन्हें वहां से हट जाने को कहा।

महाकाष्ठ-चयच्छन्नम्—काष्ठानां चयः=काष्ठचयः। महांश्च असौ काष्ठचयः महाकाष्ठचयः (लकड़ियों का बड़ा ढेर), तेन छन्नम्=उस से ढांपे हुए को।

प्रज्वाल्य—जला कर। व्याकरण के अनुसार 'प्रज्वलय्य' ऐसा प्रयोग साधु होगा।

ददहुः—जलाया। √दह् लिट्। व्याकरण के अनुसार 'देहुः' ऐसा होना चाहिये।

स्वामिनोदिताः—स्वामिना नोदिताः (तृतीया-तत्पुरुष), स्वामी से प्रेरे हुए।

पवनेरितः—पवनेन ईरितः=वायु से भड़काई हुई।

पद्मास्तरणास्तृतानि—पद्मान्येव आस्तरणानि तैः आस्तृतानि आच्छन्नानि। कमलरूपी बिछौने से ढांपी हुई।

वाग्मिनः—वाचामीश्वराः, वाणी पर अधिकार रखने वाले, धाराप्रवाह अतीव सुन्दर बोलने वाले।

नियम्यताम्---रोकिये।

शासितारः---शिक्षा देंगे। √शास् लुट्। उत्तमपुरुष बहुवचन में 'शासितास्मः' ऐसा रूप होना चाहिये।

अर्भकः---बच्चा। 'पोतः पाको-ऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशु' इत्यमरः। ये सब बच्चे के नाम हैं।

उपदेशान्तरे---उपदेश (अध्यापन) की समाप्ति के अवसर पर। अन्तर--नपुंसक=अवसर।

पाठ-सारः

आसीत् पुरा हिरण्यकशिपुर् नामाऽसुराऽधिपतिः, यस्येश्वरः कश्चिन् नाऽऽसीत्, यश् चाऽऽत्मानम् एवेश्वरम् अमन्यत। तस्य प्रह्लादो नाम पुत्र आसीत्। प्राप्ते काले स गुरुकुले पठनाय प्रेषितः। एकदा पित्राऽऽहूय पृष्टम्---पुत्र ! श्रावय, किं पठितम् इति। तदा तेन भगवन्-महिम्नः स्तोत्राणि श्रावितानि। तेन क्रुद्धो हिरण्यकशिपुस् तं हन्तुं विविधान् उपायान् अकरोत्। सर्वथाऽव्याकुलं स्वस्थम् अक्षतं दृष्ट्वा कुल-पुरोहिता राजानं प्रार्थयन्त---मुग्धोऽयं बालो न भवतां क्रोधस्य आस्पदम्। अस्मत्-संनिधाने वर्तमानः स्वयम् एव सु-मतिं ग्रहीष्यतीति।

(४५—४६) वर्षा-वर्णनम्

सुग्रीवम् अभिषिच्य— सुग्रीव का राजतिलक करके।

माल्यवतः पृष्ठे — माल्यवान् नाम के पर्वत के ऊपर।

जलागमः—वर्षा ऋतु।

गिरि-संनिभैः— नित्य-समास। पर्वतसदृश (मेघों) से। यहाँ विग्रह में संनिभ शब्द नहीं आता, अ-स्वपद विग्रह होने से यह नित्य समास है। 'गिरिभिः सदृशैः' ऐसा विग्रह होगा। [हमारे मत में 'संनिभ' शब्द 'सदृश' के अर्थ में विशे-षण-वाचक होने से विग्रह में आना चाहिए। इस लिए 'गिरिभिः संनिभैः' ऐसा विग्रह करके यहाँ तृतीया तत्पुरुष समास कहना चाहिए ---संपादक]।

शक्यम्--वाक्य के आदि में नपुंसकलिङ्ग एकवचन का प्रयोग साधु माना जाता है। यद्यपि कर्म भिन्न लिङ्ग व वचन का हो। इस में सामान्योपक्रम हेतु है। 'शक्याः' ऐसा कहना तो सर्वथा प्राप्त ही था और निर्दोष भी है।

केतकगन्धिनः — केतकगन्धेन संसर्गवन्तः, केवड़े के गन्ध से मिले हुए। संसर्गे इनिः।

मेघ-कृष्णाजिन धराः—मेघा एव कृष्णाजिनानि तेषां धराः (धरन्तीति) — मेघरूपी कृष्णमृगचर्म को धारण करने वाले।

धारा-यज्ञोपवीतिनः—धारा एव यज्ञोपवीतानि तद्वन्तः, जलधारारूपी यज्ञोपवीत पहने हुए।

प्राधीताः — आदिकर्मणि क्तः, अध्येतुमारब्धाः, पढ़ रहे (ब्रह्मचारी)।

कशाभिः—कोड़ों से।

हैमीभिः—हेम्नो विकारः=हैमम् सोने के बने हुए (कोड़ों) से।

अन्तः-स्तनित-निर्घोषम्--अन्तःस्थित गर्जनशब्द से युक्त।

अम्बरं सवेदनमिव-- आकाश मानों पीडायुक्त है।

निदाघ—पुंलिङ्ग, ग्रीष्म ऋतु।

यात्रा स्थिता--चढ़ाई ठहर गई है।

प्रवासिनः—दूरवासिनः। प्रशब्दो विप्रकर्षे। घर से दूर रहने वाले।

प्रकाशम्--विशद, विमल।

अ-प्रकाशम् — अन्धकार-युक्त, मलिन, धुंधले।

रसाकुलम--रस से भरा हुआ।

षट्पद-संनिकाशम् -- भ्रमरेण सदृशम् (भौंरे जैसा) नित्य समास। षट्-पद=षट्-चरण =भ्रमर=भौंरा।

जम्बुफलम् — जम्बुफलानि। जातावेकवचनम्। जामुन।

प्रकामम्—जी भर कर। अव्यय। क्रियाविशेषण।

बलाकिनः—वलाका = बगुला, जिन के ऊपर बगुले उड़ रहे हैं।

वहन्ति वर्षन्ति...—इस श्लोक में 'यथासंख्य' अलंकार है। एक-एक क्रिया का क्रम से एक-एक कर्ता से संबन्ध है। जैसे—नद्यो वहन्ति, नदियाँ बहती हैं। घना वर्षन्ति—बादल बरसते हैं। इत्यादि।

वनान्ताः—वनस्थलियाँ।

समाश्वसन्ति—प्रसन्न होते हैं।

उदीर्ण—उठा हुआ। उद् √ईर् अदादि, आत्मनेपद—क्त।

विवर्ण-च्छदनाः—पीले पंखों वाले। विवर्णानि छदनानि येषां ते (बहुव्रीहि)।

गवेन्द्राः—महा-वृषाः। बड़े-बड़े बैल। 'इन्द्र' शब्द परे होने पर 'गो' को 'गव' हो जाता है।

निभृताः—शान्त, निश्चल।

प्रक्रीडितः—आदिकर्मणि क्तः। क्रीडितुमारब्धः, खेल रहा है।

पाठ-सारः

एषु पद्येषु एतद् उक्तं भवति—वर्षासु सर्वत्र रजसोऽभावो भवति, नभश्च सर्वदा मेघैर् आकीर्णं भूत्वाऽनेकविधं रूपं बिभर्ति। राज्ञाम् अभियानं चतुरो वार्षिकान् मासान् विरमति। अस्मिन्न् ऋतौ मयूराः, गजाः, अन्ये चापि प्राणिनः प्रायेणोन्मत्ताः सन्तः समुल्लसन्ति, इति।

(४७–४९) युधिष्ठिर-निर्वेदः

प्रकरण—महाभारत का युद्ध हो चुका। इस में महान् जन-संहार हुआ। पांडवों की सात अक्षौहिणी सेनाएं और कौरवों की ग्यारह, सब की सब इस युद्धाग्नि में भस्म हो गईं। केवल पांच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा ही बचे रहे। इस वीर-हत्या पर विचार करते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें राज्य-शासन वा लोकैश्वर्य की कुछ भी इच्छा नहीं रहती। वे एकदम विरक्त हो कर संसार से अलग-थलग हो जाना चाहते हैं। वे इस जीत को हार ही मानते हैं। यह जीत उन्हें बहुत महँगी पड़ी है। जहां उन्हें पुत्र-पौत्रों तथा दूसरे भाई-बन्धुओं का वियोग सताता है वहां अद्वितीय वीर कर्ण की मृत्यु उन्हें विशेष कर असह्य हो रही है। इस प्रकार अशान्त और अधीर हुए-हुए युधिष्ठिर के चित्त-समाधान के लिए ही महाभारत के शान्ति-पर्व की रचना हुई। ये पद्य इसी पर्व के आरम्भ से संगृहीत किये गये हैं।

भगवन्—यह देवर्षि नारद के प्रति संबोधन है। 'भग' छः पदार्थों का नाम है—संपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री (शोभा), ज्ञान, वैराग्य। यह संबोधन हर एक के प्रति नहीं होता। भरत मुनि के अनुसार देवता, मुनि, संन्यासी और साधक ही इस के अधिकारी हैं।

वार्ष्णेयी वधूः—सुभद्रा। वृष्णि (भगवान् कृष्ण का पूर्वज) का गोत्रापत्य। वधू=स्नुषा। कनिष्ठ भ्राता की भार्या होने से सुभद्रा युधिष्ठिर की स्नुषा के तुल्य है।

अ-प्रतिरथः—अविद्यमानः प्रतिरथोऽस्य। (बहुव्रीहि) प्रतिगतो रथम्=प्रतिरथः।=विरोधी, बराबर का योद्धा। यहां रथ=रथिन्।

मन्त्र-संवरणेन—रहस्य को गुप्त रखने से। कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि से छिपाए रखा कि कर्ण सूर्य के प्रसाद से उस का अपना ही पुत्र है और इस लिए उन का सगा भाई है।

सिंह-खेलगति—खेलागतिरस्य इति खेलगतिः। युद्धक्रीड़ा-युक्त चाल वाला। सिंहतुल्यः खेलगतिः 'बिम्बाधरः' की भांति मध्यमपद-लोपी कर्म-धारय। अथवा सिंहस्य खेलगतिः सिंहखेलगतिः (षष्ठी-तत्पुरुष)। सिंहखेल-गतिरिव खेलगतिरस्य (बहु-व्रीहि)। यहां उत्तरपद का लोप हो जाता है।

अ-मर्षी—दूसरे के उत्कर्ष को न सहने वाला।

नित्य-संरम्भी—नित्य क्रोधी।

घृणी—दयावान्।

आविष्टः—व्याप्तः। √विश्-क्त। आ(ङ्) उपसर्ग।

शको-कर्शितः—शोक से कृश (दुबला-पतला) हुआ-हुआ।

यद्—यदि।

भैक्ष्यम्—भिक्षैव भैक्ष्यम्। भीख।

आचरिष्याम—करते। आ √चर्-लृङ्।

वृत्ताऽर्थाः—नष्ट-प्रयोजनाः। जिन के जीने का कुछ प्रयोजन नहीं रहा। वृत्त=हो चुका, समाप्त, नष्ट।

पौरुषम्—पुरुषस्य कर्म। अण् प्रत्यय।

त्रैलोक्यस्य—त्रयो लोकाः समा-हृताः=त्रिलोकी। त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्। तीन लोक।

गवाश्वेन—गावश्च अश्वाश्च = गवाश्वम् (समाहार-द्वन्द्व)। गौओं और घोड़ों से।

व्रत-कौतुक-मङ्गलैः—व्रतानि च कौतुकानि च मङ्गलानि च (द्वन्द्व)। गौरीव्रत आदि, दुर्गोत्सव आदि तथा दूसरे शुभाचार।

स्वस्ति—अव्यय। सुखपूर्वक।

संभाविताः—पालन-पोषण किये हुए।

कृपणाः—दीन ।

फल-हेतवः—फलं हेतुः प्रयोजकं येषां ते (बहुव्रीहि) फल की इच्छा से (कर्म में) प्रेरित होने वाले ।

मृष्ट-कुण्डलाः—मृष्टानि कुण्डलानि येषां ते । मृष्ट—√मृज्+क्त= चमकाये हुए ।

पार्थिवान् भोगान्—पृथिवी के भोगों को ।

वैवस्वत-क्षयम्—यम के घर को । विवस्वान्=सूर्य । विवस्वान् का पुत्र=वैवस्वत । क्षय=निवास । √क्षि—रहना, तुदादि ।

पाठ-सारः

महाभारत-युद्धस्याऽन्ते प्राप्त-विजयोऽपि युधिष्ठिरो जयोऽयं पराजयाद् नाऽतिभिन्न इति मन्यमानः शोके महति निमज्जति । संन्यासे च मतिं कुरुते । भीष्म-द्रोणाऽऽदीनां गरीयसाम्, अभिमन्यु-प्रभृतीनां प्रियाणां, दूरस्थ-समीपस्थानां बान्धवानां च मृत्युं ध्यायन, आत्मानम् एवाऽस्य नर-संहारस्य कारणं मन्यमानो दृढम् अनुतप्यते । साम्राज्य-लिप्सवः केचित स्वार्थ-साधन-पराः पितृभ्यां सदयं लालितान् निपुणम् अवेक्षितान्, सयत्नं संवर्धितांस् तरुणान्, दारुणे युद्धाऽनले जुह्वति । देशस्य जातेश्च महत्तराम् अचिन्त्यां हानिं कुर्वन्तीति तान् धिक्-करोति महाराजः ।

---

(५१) सूक्ति-संग्रहः

१—दूर-विलम्बिनः—दूरं यथा स्यात् तथा विलम्बन्त इति =दूर नीचे आये हुए।

२—न्याय्यात् पथः—न्याय-युक्त मार्ग से। न्यायाद् अनपेतः न्याय्यः।

धीराः—धीर् अस्त्येषाम् इति, =निश्चित मति वाले। मत्वर्थीयो रः।

३—उदयति—उदय होवे। व्याकरणानुसारी रूप 'उदयते' होगा। √अय्—जाना, भ्वादि, आत्मनेपद।

४—अत्यरिच्यत—बढ़ गया। कर्म-कर्तरि प्रयोगः।

६—विहायसा गन्तुम्—आकाश मार्ग से जाने को। विहायस् (आकाश) पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों है।

कुतूहलि—कुतूहलवाला। 'मनः' का विशेषण है, इसी लिये नपुंसक है।

७—सुधा-मुचो वाचः— अमृत बरसाने वाली वाणियां।

करणम्—शरीर, इन्द्रिय।

परोपकरणम्—दूसरों की सेवा का साधन।

८—पराञ्चन्ति—वापिस लौटते हैं।

रदाः—दाँत।

९—लक्ष्मीश् चन्द्राद् अपेयात्—चाँद की कान्ति चाँद से भले ही जुदी हो जाय।

अतीयात्—उल्लङ्घन करे।

१०—अवधार्यताम् —निश्चय कीजिये।

१२—इस श्लोक में शिव की निजी महिमा और संबन्धियों की महिमा को बतला कर सर्वोपरि कर्म की महिमा को बतलाने के लिये कवि कहता है कि यह सब कुछ होने पर भी शिव भिक्षान्न से निर्वाह करता है।

महेशः—महांश् च असौ ईशः। परमेश्वर। 'महताम् ईशः' ऐसा विग्रह नहीं हो सकता। ऐसा होने पर 'महदीशः' ऐसा रूप होगा।

नगेशः = नगानाम् ईशः, =पर्वत-राज, हिमालय।

१४—बहुलीभवन्ति — बढ़ जाते हैं। अबहुला बहुलाः संपद्यमाना भवन्ति। 'बहुली' यह च्वि-प्रत्ययान्त अव्यय है। इस का 'भवन्ति' के साथ समास नहीं, लोक में तिङन्त के साथ समास नहीं होता।

१६—इस श्लोक में कवि ने प्रतिषेध्य कर्मों को बड़े सुन्दर ढंग से बता दिया है।

१८—यहां स्तुति को कन्या (कँवारी लड़की) का रूप दिया गया है और बड़े चातुर्य से बताया है कि उसे वर प्राप्त करना कठिन हो रहा है।

१९—अर्धाङ्गाश्रितदारः — अर्धाङ्गेन आश्रिता अवलम्बिता दारा येन सः, जिस ने अपनी पत्नी (पार्वती) को अपने आधे शरीर में धारण किया हुआ है।

२०—अन्नपूर्णा— =पार्वती। दूसरा अर्थ है—अन्नेन (अन्नस्येति वा) पूर्णा=अन्न से भरी हुई।

२१—वाचा दुरुक्तं बीभत्सम्— यह वाक्य हेतु बतलाता है कि क्यों वाणी का घाव अच्छा नहीं होता—क्योंकि वाणी से कहा हुआ अपशब्द बहुत घृणित होता है, वह पूय-क्लिन्न (पीप से भरा) सा दीखता है।

२३--कुटुम्बकम्-- कुटुम्बम् (स्वार्थे कन्)। परिवार ।

२५--मृजया--संस्कार से, स्नान आदि से।

वृत्तेन—आचार से।

२६--यह श्लोक प्रजागर पर्व में विदुर ने धृतराष्ट्र के प्रति कहा है.।

पथ्यस्य—हितकारी (वचन) का। पथोऽनपेतं पथ्यम्।

२८—अ-तृणे— तृणाऽभावे नञ्-तत्पुरुष । अविद्यमान-तृणे (स्थाने) जहां तृण न हो ऐसे स्थान पर।